चचा छक्कन
इम्तयाज़ अली 'ताज'

चचा छक्कन

# चचा छक्कन

हास्य की अमर कृति



लेखक

इम्तयाज़ अली 'ताज'

हंस प्रकाशन
इलाहाबाद

## अनुक्रम

## चचा छक्कन ने सबके लिए केले ख़रीदे

एक बात मैं शुरू में ही कह दूँ। इस घटना के बयान करने से मेरी यह ग़रज़ हरगिज़ नहीं कि इससे चचा छक्कन की फ़ितरत के जिस पहलू पर रोशनी पड़ती है उसके बारे में आप कोई पक्की राय बना लें। सच तो यह है कि चचा छक्कन का इस तरह का वाक़या मुझे सिर्फ यही एक मालूम है। न इससे पहले कोई ऐसा वाक़या मेरी नज़र से गुज़रा और न बाद में। बल्कि ईमान की पूछिये तो इसके उलटे वाक़यात बड़ी गिनती में मेरे देखने में आ चुके हैं। बहुत बार मैं देख चुका हूं कि शाम के वक्त चचा छक्कन बाजार से कचौरियाँ या गँडेरियाँ या चिलगोजे और मूंगफलियाँ एक बड़े से रूमाल में बाँधकर घर भर के लिए ले आये हैं और फिर क्या बड़ा क्या छोटा हर एक को बराबर बाँट कर खाते खिलाते रहे हैं। पर उस दिन न जाने क्या बात हुई कि......मगर उसी की तफ़सील तो मुझे बयान करनी है।

उस दिन तीसरे पहर के वक्त संयोग से चचा छक्कन और बुन्दू के सिवा कोई भी घर पर मौजूद न था। मीर मुन्शी साहब की बेगम को जाड़ा बुखार आ रहा था। चची दोपहर के खाने से छुट्टी पाकर उनके यहाँ हाल पूछने चली गई थीं। बन्नो को घर छोड़े जा रही थीं कि चचा ने फरमाया — बीमार को देखने जा रही हो तो शाम से पहले क्या लौटना होगा। बच्ची पीछे घबरायेगी। साथ ले जातीं। वहाँ बच्चों में खेल कर बहली रहेगी। चची बड़बड़ाती हुई बन्नो को साथ ले गईं। इमामी चची को मीर मुन्शी साहब के घर तक पहुँचाने जा रहा था। मगर

बन्नो साथ कर दी गई तो बच्ची के खयाल से उसे भी वहीं ठहरना पड़ा।

लल्लू के मदरसे का डी० ए० वी० स्कूल से क्रिकेट मैच था। वह सुबह से उधर गया हुआ था। मोदे की राय में लल्लू अपनी टीम का बेहतरीन खिलाड़ी है। अपनी इस राय की वजह से उसे क्रिकेट के अक्सर मैचों का तमाशाई बनने का मौका मिल जाता है। आज भी वह लल्लू के साथ गया हुआ था।

दो बजे से सिनेमा का मेटनी शो था। दद्दू चचा से इजाजत लेकर तमाशा देखने जा रहा था। छुट्टन को जो पता लगा कि दद्दू तमाशे में जा रहा है तो ठीक वक्त पर वह मचल गया और साथ जाने की ज़िद करने लगा। चचा ने उसकी तालीम-तरबियत के पहलुओं पर चची का हवाला दे देकर एक छोटा सा लेकिन क़ाबलियत भरा लेक्चर देते हुए उसे भी इजाज़त दे दी। असल बात यह है कि चची कहीं मुलाकात को गई हों तो बाकी लोगों को बाहर जाने के लिए चचा से इजाज़त ले लेने में कोई दुशवारी नहीं होती। ऐसे नादिर मौक़ों में चचा पूरी तनहाई को ज़्यादा पसन्द करते हैं। दूसरे कामों ने जिन बातों की तरफ चची को अरसे से ध्यान देने की इजाज़त नहीं दी होती, ऐसे वक्त चचा ढूंढ़ ढूंढ़कर उनकी तरफ ध्यान देते हैं। इससे चची को यह जताना होता है कि घर की मशीन में उनकी हस्ती एक बेकार पुरज़े से ज़्यादा महत्व नहीं रखती, और यह चचा के ही दम का ज़हूरा है कि देखने वाले को घर में सुघड़ापे के कुछ आसार नज़र आते हैं।

आज चचा के दिमाग़ ने चची की ग़ैर हाज़िरी में घर के तमाम ऐसे बर्तन जो पीतल के थे, सहन में जमा कर लिये थे। बुन्दू को बाजार भेजकर दो पैसे की इमली मँगाई थी। सहन में मोंढा डाल कर बैठ गये थे। पाँव मोढे के ऊपर रक्खे हुए थे। हुक्के की नाल मुँह से लगी हुई थी। निजी देखरेख में पीतल के बर्तनों की सफाई की तैयारी हो रही थी।

"अरे अहमक़ ! अब दूसरा बर्तन क्या होगा। जो बर्तन साफ करने हैं उन्हीं में से किसी एक में इमली भिगो डाल......और क्या, यों......बस यही पीतल का लोटा काम दे जायगा। साफ तो उसे करना ही है। एक दूसरा बर्तन लाकर उसे खराब करने से फायदा। ऐसी बातें तुम लोगों को खुद क्यों नहीं सूझ जातीं ?"

बुन्दू ने हुक्म पाकर कुछ कहे बगैर इमली लोटे में भिगो दी। चचा ने गर्व से इतमीनान ज़ाहिर किया—कैसी बताई तरकीब ? ज़रूरत भी पूरी हो गई और अपना......यानी काम भी एक हद तक हो गया। ले बावर्चीखाने जाकर बर्तन माँजने को थोड़ी सी राख ले आ। किस बर्तन में लायेगा भला ?

बुन्दू ने बड़ी समझदारी से तमाम बर्तनों पर निगाह डाली और उनमें से एक सीनी उठाकर चचा की तरफ देखने लगा। चचा भी इस ग़रज़ के लिए शायद सीनी ही तजवीज करना चाहते थे। अपनी तरफ से हिदायत देने का मौका न मिल सका तो पूछने लगे—क्यों भला ?

बुन्दू बोला—चूल्हे से उठाकर इसमें आसानी से राख रख लूँगा।

"अहमक़ कहीं का इसके अलावा खुले वर्तन में राख होगी तो उठा उठा कर बर्तन माँजने में आसानी न होगी ?"

बुन्दू अभी बावर्चीखाने से राख लाने न पाया था कि दरवाजे पर एक फल वाले ने आवाज लगाई। कलकतिया केले बेचने लाया था। उसकी आवाज़ सुनकर कुछ देर तो चचा चुप बैठे हुक्का पीते रहे। कश अलबत्ता जल्दी जल्दी लगा रहे थे। मालूम होता था दिमाग में किसी किस्म की खींचतान चल रही है। जब आवाज़ से मालूम हुआ कि फल वाला वापस जा रहा है तो जैसे बेबस से हो गये। बुन्दू को आवाज दी—जरा जाकर देखियो तो, केले किस हिसाब देता है ?

बुन्दू ने वापस आकर बताया—छः आने दर्जन।

"छः आने के दर्जन; तो क्या मतलब हुआ, कि चौबीस पैसे के बारह। बारह दूनी चौबीस यानी दो पैसे का एक। ऊँहूँ, महँगे हैं। जाकर कहो तीन पैसे के दो देता है तो दे जाय।"

दो मिनट बाद बुन्दू ने आकर कहा कि मान गया केले वाला। कितने के केले लेने हैं?

फल वाला इस आसानी से राज़ी हो गया तो चाचा की नियत में फितूर आया।

"यानी तीन पैसे के दो केले? क्या ख़याल है, महँगे नहीं हैं इस भाव में?"

बुन्दू बोला—अब तो उससे फ़ैसला हो गया।

"तो क्या किसी अदालत का फ़ैसला है कि इतने ही भाव पर केले लिये जायँ। हम तो तीन आने दर्जन लेंगे। देता है दे, नहीं देता है न दे। वह अपने घर खुश, हम अपने घर खुश।"

बुन्दू पसोपेश की हालत में खड़ा हुआ था।

"अबे तू जाकर कह तो सही। मान जायगा।"

बुन्दू जाने से कतरा रहा था, "आप खुद कह दीजिये।"

चचा ने जवाब में आँखें फाड़ कर बुन्दू को घूरा। वह बेचारा डर गया। लेकिन अब भी वहीं खड़ा रहा। चचा को उसका पसोपेश किसी कदर जायज़ मालूम हुआ। उसे दलील का रास्ता समझाने लगे—तू जाकर यह कह कि मियाँ ने तीन आने दर्जन ही कहे थे। मैंने आकर गलत भाव कह दिया। तीन आने दर्जन देने हों तो दे जा।

बुन्दू जी कड़ा करके बाहर चला गया।

चचा जानते थे भाव ठहराकर उससे मुकर जाने पर केलेवाला गुल मचायगा। बाहर निकलना भी ठीक न मालूम होता था। दबे पाँव अन्दर गये और कमरे की जो खिड़की ड्योढ़ी में खुलती थी उसका पट ज़रा सा खोलकर बाहर झाँकने लगे। फल वाला गरम हो रहा था—आप ही ने तो एक भाव ठहराया और आप ही ज़बान से फिर गये।

बहाना नौकर की भूल का। जैसे हम समझ नहीं सकते। या बेईमानी तेरा ही आसरा।

बुन्दू बेचारा चुपका खड़ा था। फलवाला बकता-झकता झाबी उठाकर चलने लगा। बुन्दू भी अन्दर जाने को मुड़ गया। दरवाजे तक पहुँचने न पाया था कि फल वाला रुक गया। झाबी उतारकर बोला —कितने लेने हैं ?

बुन्दू अन्दर आया तो चचा मोढ़े पर बैठे जैसे किसी ख़याल में मगन हुक्का पी रहे थे। चौंक कर बोले—"मान गया ? हम कहते थे न मान जायगा। हम तो इन लोगों की रग रग से वाक़िफ़ हैं। तो कै केले लेने ठीक होंगे ?" चचा ने उँगलियों पर गिन-गिन कर हिसाब लगाया—हम खुद, छुट्टन की अम्माँ, लल्लू, दद्दू, बन्नो और छुट्टन गोया छः। छः दूनी क्या हुआ ? खुदा तेरा भला करे बारह। यानी एक दर्जन। फ़ी आदमी दो केले बहुत होंगे, फल से पेट तो भरा नहीं जाता, मुँह का ज़ायक़ा बदला जाता है ! पर देखियो, दो तीन गुच्छे अन्दर ले आना। हम आप उनमें से अच्छे-अच्छे केले छाँट लेंगे।

फलवाले ने नाक भौं सिकोड़ते हुए केलों के गुच्छे अन्दर भेज दिये। चचा ने केलों को दबा दबा कर देखा। उनकी चित्तियों का मुआयना किया और दर्जन भर केले अलग कर लिये। केले वाला बाक़ी केले लिये बड़बड़ाता हुआ गया। चचा ने बुन्दू की ओर ध्यान दिया। बोले—ले इन्हें खाने की डोली में हिफाज़त से रख दे। रात के खाने पर लाकर रखना। और जल्दी से आकर बर्तन मांजने के लिए राख ला। बड़ा वक्त बरबाद हो गया इस किस्से में।

बुन्दू केले अन्दर रख आया और बावर्चीखाने से राख लाकर बर्तन मांजने लगा—"यों......ज़रा ज़ोर से हाथ...ताकि बर्तन पर रगड़ पड़े, इस तरह ! पीतल के बर्तन साफ़ करने के लिए ज़रूरत इस बात की होती है कि इमली के इस्तेमाल से पहले उन्हें एक बार खूब अच्छी तरह मांजकर साफ़ कर लिया जाय। ऐसे सब बर्तनों के लिए

इमली निहायत लाजवाब नुस्खा है। गिरह में बाँध रख। किसी दिन काम आयगा। और एक पीतल ही का क्या ज़िक्र। धात की सभी चीजें इमली से दमक उठती हैं। अभी-अभी तू आप देखियो कि इन काले बर्तनों की सूरत क्या निकल आती है। हाँ। हाँ, वह मैंने कहा, केले एहतियात से रख दिये हैं न? डोली में? हूँ। अच्छे भाव मिल गये। एक एक के लिए दो-दो ठीक रहेंगे?.......यों, बस, मंज गया। अब रगड़ इस पर इमली। इस तरह। देखा मैल किस तरह कटता है? कैसी चमक आती जा रही है? यह इमली दरहक़ीक़त बड़ी बेनज़ीर चीज़ है। मगर मैंने कहा, बुन्दू, मेरे भाई, ज़रा उठियो तो। उन केलों में से दो जो हमारे हिस्से के हैं, हमें ला दीजियो। हम अभी खाये लेते हैं। बाकी लोग जब आयेंगे, अपना हिस्सा खाते रहेंगे।''

बुन्दू ने उठकर दो केले चचा को ला दिये। चचा ने मोढ़े पर उकड़ूँ बैठे बैठे पैंतरा बदला और केलों को थोड़ा थोड़ा छीलना और तकल्लुफ़ से खाना शुरू किया।

''तू किये जा अपना काम। ज़रा झपाटे से। देखना अब ज़रा देर में इन बर्तनों की क्या शकल निकल आती है।......अच्छे हैं केले ......बस योंही, ज़रा ज़ोर से हाथ......इस तरह......छुट्टन की अम्माँ देखेंगी तो समझेंगी आज ही नये बर्तन खरीद किये हैं। और फिर लुत्फ़ यह कि हड़ लगे न फिटकरी और रङ्ग चोखा। आखिर कितने की आ गई इमली?......न न खुद ही कहो कितने की आई इमली? दो पैसे की न? तू आप खरीद कर लाया था, और फिर जो कुछ किया तूने अपने हाथ से किया है। यह तो हुआ नहीं कि तुझसे आँख बचाकर हमने बीच में कुछ मिला दिया हो। बस यह जितनी भी करामात है, सिर्फ़ इमली की है, महज़ इमली की। और, वह मैंने कहा, अब कै केले बाकी रह गये हैं? दस? हूँ, खूब चीज़ है न इमली? एक टके के खर्च में चीज़ों की कायापलट हो जाती है। मगर बुन्दू अब इन दस केलों का हिसाब बैठेगा किस तरह? यानी हम

न शरीक हों जब तो हर एक को दो दो केले मिल रहे हैं। लेकिन हमारी शिरकत के बग़ैर शायद दूसरों का भी खाने को जी न चाहे। क्यों? छुट्टन की अम्माँ तो हमारे बग़ैर नज़र उठाकर भी न देखना चाहेंगी। तूने खुद देखा होगा। कई बार ऐसा हो चुका है। और बच्चों में भी दूसरे हज़ार ऐब हों पर इतनी खूबी ज़रूर है कि नदीदे और लालची नहीं हैं। सब ने मिलकर हमको शरीक करने के लिए इसरार शुरू कर दिया तो बड़ी दिक्कत होगी। बराबर बांटने को केले काटने पड़ेंगे, और कलकतिया केले की हैसियत ही क्या होती है। काटने में सब की मिट्टी पलीद होगी। कै केले बताये थे तूने? दस केले और छः आदमी। टेढ़ी बात है। मगर हम कहते हैं, मसलन् फी आदमी एक-एक का हिसाब रख दिया जाय तो? दो दो न सही एक ही हो। मगर खायें तो सब हँसी-खुशी मिल जुलकर। ठीक है न? गोया छै रख छोड़ने ज़रूरी हैं। तो इस सूरत में कै केले जरूरत से ज्यादा हुए? चार न? हूँ, तो मेरे खयाल में वह चारों फ़ालतू केले लेता आ। बाकी बचे छै, तो अपना ठीक हिसाब से तक़सीम हो जायँगे।''

बुन्दू उठकर चार केले ले आया। चचा ने इतमीनान से उन्हें खाना शुरू कर दिया।

''हाँ, तो तू कायल भी हुआ इमली की करामात का? बेशुमार फ़ायदों की चीज़ है। मगर क्या कीजिये। इस ज़माने में देस की चीज़ों की तरफ़ कोई तवज्जोह नहीं करता। यही इमली अगर विलायत से डिब्बों की शक्ल में आती तो जनाब, लोग इस पर टूटे पड़ते। हर घर में इसका एक डिब्बा मौजूद रहता। मगर चूंकि पंसारी की दूकान से मिल जाती है, कोई ख़ातिर में नहीं लाता। और फिर बर्तनों की सफ़ाई का क्या ज़िक्र। इसके और भी तो बहुत से फ़ायदे हैं। यानी सर के दर्द की शिकायत के लिए इससे बेहतर चीज़ सुनने में नहीं आई। और फिर यह भी नहीं कि कड़वी कसैली हो या बदमज़ा बदबूदार हो। शरबत बना-इये, खटमिट्ठा। ऐसा मज़ेदार होता है कि क्या कहिये। केले भी बड़े

मज़ेदार हैं, ज़्यादा न ले लिये तूने । इमली का शरबत तो शायद तूने भी पिया हो । कैसा ज़ायकेदार होता है । गर्मियों में तो नेमत है, और फिर मज़ा यह है कि मुफ़ीद भी बेहद । इमतले को यह रोकता है । इमतला नहीं जानता ? अरे अहमक़ मतली की शिकायत को इमतला कहते हैं । इसके अलावा सफ़रे के लिए भी यह फायदा करती है । सफ़रा ( पित्त ) भी एक चीज़ होती है । फिर कभी समझायँगे ।···तो वह केले तो अब छः ही बाकी रह गये हैं । कुछ नहीं, बस ठीक है । सबके हिस्से में एक एक आ जायगा । हमें हमारे हिस्से का मिल जायगा । दूसरों को अपने अपने हिस्से का, हमें हमारे हिस्से का । काट-छांट का झगड़ा तो ख़तम हुआ । अपने-अपने हिस्से का केला लें और जो जी चाहे करें । जी चाहे आज खायँ, आज जी न चाहे तो कल खा लें । और क्या । होना भी यही चाहिए । जब जी न चाहे और कोई चीज़ खाई जाय तो वह बदन को नहीं लगती । यानी अकारथ चली जाती है । कोई चीज़ आदमी उसी वक्त खाये जब उसके खाने को जी चाहे । छुट्टन की अम्मा की हमेशा से यही हालत है । जी चाहता है तब कोई चीज़ खाती हैं । न चाहे तो कभी हाथ नहीं लगातीं । हमारा अपना भी वही हाल है । ये फुटकर चीज़ें खाने को कभी-कभार ही जी चाहता है । होना भी ऐसा ही चाहिए । अब यही केले हैं । बीसियों दफ़ा दूकानों पर रक्खे देखे, कभी जी न चाहा । आज जी चाहा तो खाने बैठ गये । अब फिर न जाने कब जी चाहे । हमारी तो कुछ ऐसी तबियत है । न जाने शाम को जब तक सब आयें, ख्वाहिश रहे न रहे, यकीन से क्या कहा जा सकता है । दिल ही तो है । हो सकता है उस वक्त केले के नाम से ही तबियत को नफ़रत हो । तो ऐसी सूरत में हम समझते हैं कि बाकी छः केलों में से अपने हिस्से का एक केला अभी खा लेते हैं । क्यों, और क्या ? अपनी अपनी तबियत है, अपनी अपनी भूख । जब जिसका जी चाहे खाय । इसमें तकल्लुफ़ क्या । ऐसे मामलों में तो बे-तकल्लुफ़ी ही अच्छी—

ऐ 'ज़ौक़' तकल्लुफ़ में है तकलीफ़ सरासर
आराम से वह हैं जो तकल्लुफ़ नहीं करते ।
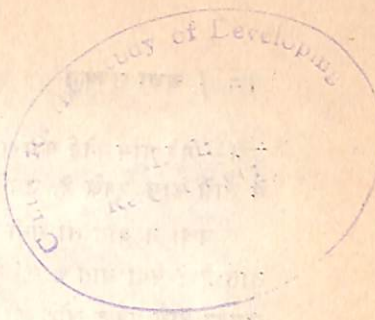
तो ज़रा उठियो मेरे भाई, बस मेरे ही हिस्से का केला लाना । बाकी सब वहीं एहतियात से रक्खे रहें ।"

हुक्म के मुताबिक बुन्दू ने केला चचा को ला दिया । चचा छील कर खाने लगे ।

"देखा, क्या सूरत निकल आई बर्तनों की । सुभानअल्लाह ! यह इमली का नुस्ख़ा असर ही ऐसा रखता है । अब इन्हें देख कर कोई कह सकता है कि पुराने बर्तन हैं । जो देखेगा, यही समझेगा कि अभी बाज़ार से मंगवा कर रक्खे हैं । दूसरों का क्या ज़िक्र । हमारी ग़ैरहाज़री में यों साफ़ किये गये होते तो वापस आकर हम खुद न पहचान सकते । छुट्टन की अम्माँ भी देखेंगी तो एक बार तो ज़रूर चौंक पड़ेंगी । तुझसे पूछें तो कह दीजियो मियाँ सारी दोपहर बैठ कर साफ़ कराते रहे हैं । पर एक बात है, इमली का ज़िक्र न आने पाये । हाँ ऐसी बात बता दो तो काम की अहमियत नहीं रहती । समझ गया न ? बस, अब यह इमली की बात आगे न निकलने पाये । जो पूछे, यही कहियो कि मियाँ ने एक नुस्ख़ा बनाकर उससे साफ़ कराये हैं । बच्चों से भी ज़िक्र न करना, नहीं तो निकल जायगी बात । कब तक आयेंगे बच्चे ? लल्लू का मैच तो शायद शाम से पहले ख़तम न हो । उसके खाने-चाय का इन्तज़ाम टीम वालों ही ने कर दिया होगा । नहीं तो खाली पेट क्रिकेट किससे खेला जाता है । कोई इन्तज़ाम न होता तो मोदे को भेजकर वहीं खाना मंगवा सकता था । खूब तर माल उड़ाया होगा आज । मेवे मिठाई से ठसाठस पेट भर लिया होगा । चलो क्या मुज़ायक़ा है । यही उमर खाने पीने की है । और फिर घर के दूसरे लोग नेमतें ग़रीब उड़ायें तो वह क्यों पीछे रहे ? दद्दू और छुट्टन तो टिकट के दाम के साथ खाने पीने के लिए भी पैसे लेकर गये हैं, और क्या ? वहीं किसी दूकान पर मेवा-मिठाई उड़ा रहे होंगे । खुदा ख़ैर करे । ज़्यादा खा-खाकर कहीं बद-

हज़मी न कर लायें। साथ कोई रोक टोक करने वाला नहीं है। तरद्दुद होता है। बन्नो का तो यह है कि माँ साथ है, वह ख़याल रक्खेगी कि कहीं ज़्यादा न खा जाय। मगर मैं कहता हूँ, केले आज हमने बड़े बेमौक़ा लिये। उस वक्त ख़याल ही नहीं आया कि आज तो ये सब बड़े-बड़े माल उड़ा रहे होंगे। केलों को क्यों खातिर में लाने लगे। और तूने भी याद न दिलाया, नहीं तो क्यों लेते इतने बहुत से केले? बेकार ख़राब होंगे। रात में रक्खे रह गये तो एक भी बाक़ी न रहेगा सड़ने से। या सूख कर काले पड़ जायँगे। मगर अपनी करनी का इलाज ही क्या। अब ख़रीद जो लिये। क्या किया जाय? किसी न किसी तरह तो ठिकाने लगाना ही पड़ेंगे। फेंके तो जा नहीं सकते। फिर ले आ न यहीं, मैं ही उन्हें ख़तम कर डालूँ।

□

## चचा छक्कन ने रद्दी निकाली

पिछले जुमे की बात है। तीसरे पहर बच्चों का उस्ताद उन्हें पढ़ाने के लिए आया तो उसने मोदे के ज़रिये अन्दर चची को कहला भेजा कि मर्दाने में बच्चों के पढ़ाने के लिए किसी कमरे का इन्तजाम कर दीजिए। वहाँ उनके लिखने-पढ़ने का सामान भी ठिकाने से रक्खा रहेगा और वह ध्यान से अपना काम भी कर सकेंगे। आजकल आधा आधा घन्टा तो किताबें कापियाँ तलाश करने में खर्च हो जाता है। फिर ड्योढ़ी में बैठकर पढ़ाता हूँ तो बच्चों का ध्यान गली में लगा रहता है। पढ़ाई ख़ाक नहीं होती।

चची दालान में बैठी बन्नो की ओढ़नी में लचका टाँक रही थीं। चचा छक्कन चारपाई के खटमल मारने की ग़रज से सहन में खड़े पायों की चूलों में उबलता पानी डलवा रहे थे और शायद इस डर से कि कहीं इस कारनामे कि तारीफ़ उनके तेज़ दिमाग़ के बजाय बुन्दू की सेवाओं के खाते में न चली जाय, चची को बार बार ध्यान भी दिलाते जाते थे कि यह बड़ा नायाब और शर्तिया नुस्ख़ा है और जब कभी आज़माया तीर की तरह काम करते पाया। और फिर मजा यह कि बिना दवाओं का नुस्खा, यानी सिर्फ पानी, सादा पानी, इतनी बात ज़रूर कि खौलता हुआ हो।

इस विद्वत्तापूर्ण लेक्चर का जो जवाब चची की जबान तक आता उसमें उन्हें तंगदिली झलकती नज़र आती थी इसलिए दिल ही दिल में खिझी हुई, बैठी थीं। बुन्दू ने आकर उस्ताद का पैग़ाम सुनाया तो भड़क

उठीं—मेरे पास कोई कमरा नहीं। जिनका घर है, जिन्होंने खाली कमरों में ताले डाल रक्खे हैं, उनसे कहें।

चचा ने बात तो सुनी न थी, चची का जवाब सुनकर चौंके, "क्या बात है ? क्या बात है ?" बुन्दू लोटा लिये पानी चूल में डाल रहा था। उसका हाथ पकड़ लोटे की टोंटी ऊपर कर दी कि कहीं ध्यान दूसरी तरफ होने के बीच खटमल हराम मौत न मरते रहें।

मोदे ने उस्ताद का पैग़ाम दोहरा दिया। सुनकर बोले—लाहौल विला क़ूवत। इतनी सी बात थी जिसे अफ़साना कर दिया। अरे भई, यही चाहती हो न कि बाहर का काग़ज़ात वाला कमरा ख़ाली कर दिया जाय ? तो सीधे सीधे यह बात कह देतीं। इसमें भला बिगड़ने का कौन सा मौक़ा है। आज ही लो, अभी लो, ख़ाली हुआ जाता है कमरा।

चची को भी अपना बिगड़ना बेमौक़ा सा लगने लगा। सुलह करने के अन्दाज़ में बोलीं—कमरा खाली करने को कौन कहता है। पिछले इतवार को ही मैंने सफ़ाई कराके उसमें फ़र्श बिछवाया है, काग-ज़ात अलमारियों में रक्खे हैं, उन्हें भी झाड़ पोंछकर ऊपर ऊपर से ठीक कर दिया था। अगर कमरा खोलकर अलमारियों में ताले डाल दिये जायँ तो कमरा बड़े मज़े में काम में आ सकता है।

अधूरे काम, आप जानिये, चचा के सलीके को हमेशा से नापसन्द हैं। बोले—"और अगर इसी बहाने अलमारी में से रद्दी काग़ज़ निकल जायँ और जो चुने हुए ज़रूरी काग़ज़ात बचें उन्हें सँभाल कर सलीके से रख दिया जाय तो कुछ मुज़ायका है ?"

चची का ख़याल नतीजों की तरफ जाने का आदी हो चुका है। यह इरादा सुनकर घबरा सी गईं। दबे स्वर में बोलीं—बच्चों को पढ़ाने के लिए जगह ही कितनी चाहिए ? एक मेज़ और दो कुरसियों के लिए कमरे का एक कोना भी मिल जाय तो बहुत है।

जवाब में चचा को अपनी सफाई-पसन्दी ज़ाहिर करने का अच्छा

मौक़ा दिखाई पड़ा। बोले—जगह तो यों गुसलख़ाने में भी मौजूद है। वहाँ पढ़ने को क्यों नहीं कह देतीं ? बस, यह बात है हिन्दुस्तानियों की जिसकी वजह से उनका घर अंगरेजों की कोठियों से अलग मालूम होने लगता है। हम लोगों में सफाई और सलीका नहीं। हम चाहते हैं कि लश्टम पश्टम बस गुज़र हो जाय।

तंग आकर चची को खुले शब्दों में परिणाम की तरफ ध्यान दिलाना पड़ा—और अगर काग़ज़ सारे कमरे में फैल गये और बैठने को भी जगह न रही तो ?

यह बात चचा की समझ में न आई—काग़ज़ फैल गये ? यह क्या बात हुई ? रद्दी निकलने से काग़ज़ फैलेंगे या सिमटेंगे ?

इसका जवाब चची क्या दें। खीझ कर मोदे से बोलीं—जाकर कह दे, कोई कमरा खाली नहीं है।

चचा ने बेहद ताज्जुब में पड़कर कहा—अरे भई क्यों ख़ाली नहीं। यानी यह बात क्या हुई ?......जवाब नहीं देतीं ? मैं कहता जो हूँ कि शाम तक कमरा ख़ाली हो जायगा। आज उस्ताद ने कहा है, कल शौक़ से कमरे में बैठकर पढ़ाये। और फिर मैं तुम्हें काम करने को थोड़ा ही कहता हूँ। तुम तो बस इतना करो कि मेरे पास किसी को आने न दो। मैं काग़ज़ात देखता रहूँ और कोई मेरे पास आये तो मेरा दम उलझने लगता है।

चची ने जलकर कहा—"तुम जानो और तुम्हारा काम।" और उठने के लिए अपनी सिलाई की चीज़ें संभालने लगीं। चचा ने बाक़ी खटमलों की जान बख्शने का हुक्म जारी किया और कुंजियों का गुच्छा संभाल कमरे को रवाना हो गये।

कमरा खोल नाक की सीध अलमारियों का रुख़ किया। किवाड़ खोले तो क्या देखते हैं कि ऊपर से नीचे तक तमाम ख़ाने बेतरतीब काग़ज़ों से ठसाठस भरे हुए हैं। अरसे से अलमारियाँ खोल कर न देखी थीं। काग़ज़ों की तादाद और हालत दिमाग़ से उतर गई थी। अब जो

उन पर निगाह डाली तो दिल रुक गया। कभी खानों को देखते, कभी सर टेढ़ा करके दाढ़ी खुजाने लगते। काग़ज़ों से गुथ जाने का हौसला न पड़ता था। चची ने जो सलाह दी थी कि कमरा खोलकर ताले अलमारियों में डाल दिये जायँ, बड़ी भेद भरी बात मालूम हो रही थी। लेकिन आप जानिये, चचा बात के धनी हैं। चची से सवाल-जवाब हो चुकने के बाद भला यह कैसे हो सकता था कि अब उनके कहे पर अमल करके अपनी शान को ठेस पहुँचाना गवारा कर लें। ख़ानों पर निगाह डाल कर दिल को हौसला दिलाने की कोशिश की—तो गोया रद्दी काग़ज़ात निकालने हैं अलमारियों से......समझे साहब......रद्दी काग़ज़ात......बल्कि यों कहिए कि काम के काग़ज़ात अलग करके रख देने हैं......होंगे ही कितने। मामूली बात है......तुम शुरू करो यार अल्लाह का नाम लेकर।

लीजिए साहब, चचा साहब पिल पड़े। काग़ज़ों के ढेर अलमारियों में से निकालने और फर्श पर चुनने शुरू कर दिये। दो अलमारियों की बिसात ही क्या होती है। ज़रा सी देर में खाली हो गईं, लेकिन कागज़ों के ढेर से सारा कमरा भर गया। कमरे की यह हालत देखकर चचा के दिमाग में एक नई खिड़की खुली। बड़े भक्तिभाव और तारीफ़ की नज़रों से अलमारी के खानों को ताकने लगे। चचा पर पहली बार यह भेद खुल रहा था कि अल्लाह मियाँ ने अलमारी भी क्या नेमत बनाई है जो अनगिनत चीजों को सिर्फ इस वजह से अपने अन्दर खपा लेती है कि वह इसमें ऊपर नीचे रक्खी जाती हैं।

काग़ज़ों के इस फर्श पर जूता उतारने की जगह के पास चचा पल्थी मारकर बैठ गये और जो ढेर सामने था उसके काग़ज़ मुलाहज़ा फरमाने शुरू कर दिये। तरह-तरह के मसौदे, दावती रुक्के, अखबारों की कतरनें, अंगरेजी अखबारों की तस्वीरों के पन्ने, दूकानदारों के इश्तहार, मनीआर्डरों की रसीदें, ईद कार्ड, हिसाब के पुर्जे और न जाने क्या-क्या। एक हाथ काम के काग़ज़ों की जगह मुकर्रर कर ली दूसरे हाथ रद्दी

काग़ज़ों की। मन ठिकाने लगा। काग़ज़ों की छँटाई शुरू कर दी।

एक-एक काग़ज़ को उठाकर ध्यान से देखते, किसी को इस हाथ रख लेते, किसी को उस हाथ। कुछ काग़ज़ों के लिए दोनों ढेर अपने अपने हक पर खेंचा-तानी करते। चचा का हाथ बेबसी की हालत में कभी एक ढेर की तरफ बढ़ता कभी दूसरे ढेर की तरफ। कुछ काग़ज़ अपनी पारी खतम होने के बहुत देर बाद अपना हक़ साबित करने में कामयाब होते। एक ढेर में दब चुकने के बाद निकल कर दूसरे ढेर में पहुँचते। ग़रज़ यह कि बड़ी लगन के साथ यह काम शुरू हो गया था। रात तक रद्दी अलग करनी थी। अगले दिन कमरा बच्चों के इस्तेमाल को दे देने का वायदा था। काम भी लम्बा चौड़ा था। फिर बेअख़्तियारी में जो बातें चची से कह बैठते थे उनकी पत भी थी। बड़ी मुस्तैदी से बाँट के धन्धे में जुटे हुए थे और बड़ी फुर्ती से हर काग़ज़ से निबटते चले जा रहे थे।

आध घन्टे तक तो वह काम चुपचुपाते बड़ी मुस्तैदी से होता रहा। काग़ज़ों के कई ढेर दो-दो हिस्सों में बँटते चले गये। लेकिन इसके बाद जब चचा ने एक बार सिर उठाकर रद्दी और काम के काग़ज़ों पर एक नज़र डाली तो ख़याल आया कि रद्दी उससे बहुत ज़्यादा बढ़ती चली जाती है जितना सोचा था। रद्दी को बड़े ग़ौर से देखने लगे। मानो उससे पूछ रहे हों कि तू इतनी ज़्यादा क्यों निकल आई? और हमने तुझे इतनी ज़्यादा मिक़दार में रक्खा क्यों था? शक हुआ कि सफ़ाई के जोश में कहीं कारआमद काग़ज़ तो इस ढेर की भेंट नहीं होते जा रहे हैं। ऊपर ही किसी घी की दूकान का इश्तहार पड़ा था। उसे देखते देखते ख़याल आया कि पिछले दिनों छम्मन ख़ाँ कह रहे थे कि देहात से घी मँगाने का बन्दोबस्त करके शहर में ख़ालिस घी की दूकान खोलना चाहते हैं। मान लीजिये, उन्होंने दूकान खोल ली तो उसके बारे में इश्तहार भी ज़रूर बाँटेंगे। और इश्तहार लिखाने के लिए हमारे सिवा आख़िर किसके पास जायँगे। ऐसी हालत में उसी मज़मून का एक इश्त-

हार सामने होना बहुत फ़ायदा पहुँचा सकता है।

यह ख़याल आते ही उस इश्तहार को उठाकर काम के काग़ज़ों में रख लिया और मुनासिब मालूम हुआ कि रद्दी काग़ज़ों पर खूब सोच समझ कर ध्यान से एक नज़र और फिर डाल ली जाय। अब जो उन काग़ज़ों को ध्यान से देखा तो पता चला कि सफ़ाई की रौ में बड़ी बड़ी नायाब चीज़ें रद्दी करते चले गये हैं। मुन्ने ख़ाँ दर्ज़ी का बिल रद्दी कर डालना आख़िर क्या मानी ? कुछ नहीं तो चार दिन की बहस के बाद उससे बंडी की सिलाई तय हुई थी। कल नई बंडी सिलवाने पर वह इसी तरह की बहस फिर खड़ी कर दे तो ? सनद के तौर पर बिल अपने पास हो तो कितना वक्त फ़ायदे के कामों के लिए बचाया जा सकता है। मसीता का हिसाब करके उससे बेबाकी की जो रसीद ली थी, ज़रूरत के वक्त वह भी बड़ी कारआमद साबित हो सकती है। इन घोसियों का भला क्या एतबार। अगर कल को कहे कि मेरा हिसाब तो पिछले बरस से चला आ रहा है तो जनाबमन, रसीद के बग़ैर भला कैसे साबित हो जायगा कि ससुरा झूठ बकता है। आये हुए ईद कार्ड अपने ऊपर ईद सम्बन्धी छपे शेरों के कारण बहुत ही फ़ायदे की चीज़ साबित हो सकते हैं। मसलन् अगर ईद के मौके पर यही शेर सादे काग़ज़ पर नक़ल करके भेज दिये जायँ तो तबियत की सादगी भी ज़ाहिर हो और किफ़ायत भी रहे। अख़बार की कतरनें शौक़ से काट कर रक्खी थीं तो उनमें ज़रूर कोई बात क़दर के क़ाबिल दिखाई पड़ी होगी। तस्वीरों का क़ायदा तो सभी जानते हैं। बच्चों का दिल बहलाया जा सकता है, चौखटों में लगवाई जा सकती हैं, तोहफे के तौर पर दी जा सकती हैं। और पुराने अख़बार भी, अगर ग़ौर किया जाय तो बड़े काम की चीज़ हैं, मसलन् सन्दूकों और अलमारियों में बिछाये जा सकते हैं और बरसात के दिनों में इनसे बच्चों के लिए नाव बनाने का काम लिया जा सकता है, यानी बच्चों का एक ज़रा सा शौक पूरा करने के लिए इसके सिवा चारा नहीं होगा कि एक नया अख़बार उठाकर ज़ाया कर दिया

जाय। ग़रज़ यह कि पहले आध घन्टे में जितने काग़ज़ रद्दी क़रार पाये थे अगले आध घन्टे में क़रीब क़रीब सबके सब किसी न किसी वजह से कार आमद करार पा गये। एक घन्टे की मेहनत के नतीजों पर ग़ौर किया तो चचा को अपने मिज़ाज में एक तरह की तब्दीली महसूस होने लगी, यानी उनकी तबियत उनके इरादे से असहयोग करने पर तुली मालूम होती थी। शरीर भी विद्रोह पर तुल चुका था। जम्हाइयाँ और अंगड़ाइयाँ चली आ रही थीं। कमर पर हाथ रखकर उसे सीधा करने की जरूरत पड़ रही थी। आँखें काग़जों को केवल देख रही थीं कि बिखरे पड़े हुए हैं। मन केवल इतना कह रहा था कि अगर यह चुन चुन कर एक जगह हो जाते तो बहुत ही अच्छा होता। और उनसे निबटने की उमंग मर सी चुकी थी। सब बातों पर सोच विचार करके यह मुनासिब मालूम हो रहा था कि ज़रा देर को छुट्टी तो हर हालत में मनाई जाय। बुन्दू को आवाज़ दी कि पान लाये। मोदे को हुक्का ताज़ा करके लाने को कहा और खुद फ़र्श पर लेट गये। दिल तफ़रीह की खोज में था। काग़ज़ों में ऊपर ही एक मेम की तस्वीर रखी हुई थी। उसका हुस्न कभी चचा को भाया होगा इसलिए अख़बार में से फाड़ कर रख ली थी। टाँग पर टाँग रखकर उसका मुलाहज़ा फ़रमाने लगे। बुन्दू पान लाया तो तस्वीर की तरफ इशारा करके उससे पूछा—क्यों बे, इससे करेगा शादी ?

बुन्दू ने तस्वीर ले ली। उसे देखकर हँसने लगा। बोला—यह तो मेम है। उसकी नजरें कह रही थीं कि तस्वीर देखकर खुश हुआ है।

इतने में मोदे ने उसे आवाज दी कि बीबी जी बुला रही हैं। बुन्दू तस्वीर हाथ में लिये लिये चल पड़ा। चचा ने तुरन्त टोक कर तस्वीर रखवा ली। उसके जाने के बाद खुद उसे गौर से देखने लगे। फिर काम के काग़ज़ों में रख ली।

एकाएक ख़याल आया कि जब पहला ढेर छाँटने बैठे थे तो शुरू शुरू में ही अपनी कभी की कही हुई एक अधूरी ग़जल निगाह के सामने पड़ी थी। सोचा, जरा देर उसका आनन्द ले लेने में कोई हर्ज न होगा।

ढेर को उलटकर सामने रखा। उसके बहुत से कागज बिखेर कर ग़ज़ल ढूँढ़ निकाली। एक शर्मीली मुस्कराहट के साथ उसका पाठ करने लगे। मोदा हुक्का लेकर आ रहा था। उसके कदमों की आहट मालूम हुई। ऊँची आवाज में पढ़ना शुरू कर दिया—

ख़ाक पर है तने बेजाँ मेरा
ध्यान रखना सगे-जानाँ मेरा
क़स्दे-सहरा जो कभी करता हूँ
पाँव पड़ता है गरेबाँ मेरा।

असल बात यह थी कि मोदा अकेले में कई बार अक्सर ग़ज़लों के शेर गुनगुनाता हुआ सुना गया था। चचा को ख़याल आया कि अगर उसको कुछ अच्छे और फ़न के एतबार से पुख़्ता शेर याद करा दिये जायँ तो यह अपने और उसके दोनों के लिए खुशी का कारण होगा। लेकिन मोदा क़द्रदान न निकला। हुक्का रखते ही वापस चला गया। चचा शेर पढ़ने के दौरान में गर्दन मोड़ मोड़ कर बाहर देखते रहे कि मुमकिन है लिहाज़ के मारे सामने आकर शेर सुनने की हिम्मत न पड़ी हो। लेकिन थोड़ी देर बाद जब अन्दर सहन में से उसकी आवाज सुनाई दी तो नाराज से होकर बोले—जाहिल है या छुट्टन की अम्माँ ने ताकीद कर रक्खी होगी कि वहाँ ज्यादा देर न ठहरना।

इसके बाद चचा हुक्के के कश लगाते हुए ज़िन्दगी के फ़लसफ़े पर ग़ौर करने लगे। थोड़ी थोड़ी देर के बाद कागजों पर भी एक नज़र डाल लेते थे। तजरबा कर रहे थे कि जब कागजों को बिखेर कर हुक्का पीना शुरू कर दिया जाय तो ऐसी हालत में काग़जों का चलन क्या होता है।

संयोग से दूर के एक ढेर के ऊपर चची के हाथ का लिखा हुआ एक लिफाफा दिखाई पड़ा। हाथ बढ़ाकर उसे उठा लिया। खोल कर देखा तो चचा के नाम उनका खत था। सन् २३ में दद्दू को निमोनिया हो गया था। उन दिनों चचा किसी काम से लखनऊ गये हुए थे। चची

ने बड़ी परेशानी की हालत में उन्हें खत लिखकर जल्द वापस आने की बड़ी मिन्नत खुशामद की थी। चचा ने यह ख़त पढ़ा तो शायद चची की विनम्रता और परेशानी को याद करके मुनासिब मालूम हुआ कि घर में अपनी अहमियत जताने के खयाल से उसे चची को फिर से सुना डाला जाय। आखिर उठ खड़े हुए। जूती पहनते पहनते अन्दर का रुख किया। जाकर चची से कहा—छुट्टन की अम्माँ, देखना तुम्हारा एक खत मिला सन तेइस का। वह जब दद्दू को निमोनिया हुआ था और मैं लखनऊ था। कल की सी बात मालूम होती है।

चची हँडिया-चूल्हे की फिक्र में लगी थीं। बोलीं—दूर करो, ऐसे खत को मैं नहीं देखती।

चचा का काम न बना। बोले—ऐसा भी क्या वहम। मुझे तो उसे पढ़कर ख़याल आया कि अल्लाताला ने उस वक्त बड़ा ही फ़ज़ल किया वरना इस बच्चे के बचने की उम्मीद थोड़े ही थी। तभी तुमने घबरा-कर मुझे ऐसा खत लिखा था कि......

चची ने कुछ चिढ़कर कहा—अब ख़ाक भी डालो उस मनहूस वक्त की याद पर।

अपनी कोशिश में नाकाम रहने से चचा जल गये। सोचने समझने की ताकत न रही। बोले—अब खत सुनना भी गवारा नहीं, और उस वक्त कैसे लिख रही थीं, खुदा के लिए जल्दी आओ, और हाथ जोड़ती हूँ, खत पढ़ते ही रवना हो जाओ।

चची शायद असल मतलब ताड़ गई थीं। धीरे से बोलीं—बच्चे की ज़िद जो थी, बच्चों की ज़िदें तो ऐसी ही होती हैं। यह कहकर उठीं और परात ले बावर्चीखाने की कोठरी को चल दीं।

चचा ने कुछ कहना चाहा, लेकिन स्टेज खाली हो चुका था। उलटे पाँव लौटने के सिवा चारा न दिखाई पड़ा।

वापस आकर कुछ देर काग़ज़ों के बीच फर्श के एक टापू पर खड़े हो गये। दिमाग़ ख़ाली था। दिल में एक उलझन सी थी। कभी एकदम

ऐसे उड़ते मानो किसी को पुकारेंगे, फिर शायद यह सोचकर रुक जाते कि चची से कह चुके हैं, किसी को आने न दें। साथ ही यह भी सोचते कि कोई आकर भी क्या कर लेगा। ऊबकर कुरते के अन्दर हाथ डाल पेट खुजाये जा रहे थे। यह शग़ल कब तक जारी रह सकता था। आख़िर घबरा गये। कमरे से निकल ड्योढ़ी में चले आये। सड़क पर आने जाने वालों को देखने लगे। मगर कमरे के बारे में दिल में जो फाँस थी वह कैसे निकल सकती थी। समझ में न आता था कि यह बखेड़ा जो फैला आये हैं उसे अब किस तरह खूबी से समेटें। पछतावा भी था कि तुम्हें इस झंझट में पड़ने के लिये आखिर कहा किसने था। उलझन भी थी कि चची के सामने सुर्खरू कैसे होंगे। आख़िर दिल में कुछ तय कर सिर झुकाये हुए अन्दर पहुँचे। जाकर चची से कहने लगे—छुट्टन की अम्माँ! वह कल तुम आँवले का तेल मँगाने को कह रही थीं। कहो तो इस वक्त जाकर ला दूँ?

चची ने छूटते ही पूछा—कमरे का काम ख़तम कर लिया?

चचा को सवाल का ऐसा खुला अन्दाज़ बुरा तो लगा, फिर भी बोले—वह तो हो रहा है। मुझे खयाल यह आया था कि फिर तेल वाले की दूकान न बन्द हो जाय।

चची ने कहा—तेल की क्या जल्दी है। कल आ जायगा। आज कमरे का काम ही खतम कर लो तो बड़ी बात है।

चचा को इस जवाब के सिवा चारा नज़र न आया—ह हाँ, वह तो इन्शा अल्लाह खतम होगा ही।

चची भी एक हज़रत हैं। बोलीं—रात को मर्दाने में जाकर देखूंगी।

चचा झुंझलाकर बाहर निकल आये। कुछ देर ड्योढ़ी में सोच-विचार करते सिर खुजाते रहे। फिर खड़े-खड़े एक मोंढे पर बैठ गये। फ़िक्रमन्द नजरों से कभी इधर देखते थे कभी उधर। खिसियाने से हो गये थे। आखिर उठ खड़े हुए और तेज़ तेज़ कदम उठाते हुए काग़ज़ों के

कमरे में पहुँचे । खिसियाने तो हो ही रहे थे । जोश में आकर आठ दस ठोकरें काग़ज़ों के ढेरों को लगाईं और जब सब काग़ज़ खूब बिखर गये तो उन्हें उठा उठा कर अलमारी में इस तरह फेंकने लगे जिस तरह मजदूर गढ़े से मिट्टी निकाल कर फेंकते हैं ।

रात को चची मर्दाने में आईं तो देखा कि कमरा साफ है । अलमारियों में ताले पड़े हैं । बोलीं—और अलमारियाँ खोलकर अपनी कारगुज़ारी भी तो दिखाओ ।

जवाब में चचा ने कुंजियाँ तलाश करनी शुरू कर दीं । पर न जाने गुच्छा कहाँ रखकर भूल गये थे । उस दिन से आज तक यह हाल है कि दिन में तो चचा की कुंजियों का गुच्छा मिल जाता है लेकिन रात के समय जब चची मर्दाने में आ सकती हैं, तब बहुत तलाश करने पर भी कभी कुंजियों का गुच्छा नहीं मिला ।

□

## चचा छक्कन नौचन्दी देखने चले

खुदा न करे, जो चचा छक्कन कहीं के सफर के लिए तैयारी करें। वह आफ़त मचाते और धुनक धैया करते हैं कि न पूछिये । बड़ी खैरियत की बात तो यह है कि खुद सफ़र से कतराते हैं । छन्नो आपा की शादी हुई । चची बेचारी चलने के लिए कहती रह गयीं पर चचा ने लिख भेजा कि नन्हीं को कुछ दिन हुए पसली हो गयी थी, हकीम जी अभी सफर की इजाज़त नहीं देते । बन्नो आपा के यहाँ पहलौटी का लड़का हुआ । चची बेचारी ने बच्चे के लिए कुछ नहीं तो दर्जन भर जोड़े तैयार किये होंगे, खुद लेकर जाना चाहती थीं । पर चचा ने ऐन मौके पर इरादा मुलतवी कर दिया । पार्सल के साथ खत में लिख भेजा—छुट्टन का बुखार अभी नहीं टला । मजबूर हूँ कि नहीं आ सकता । चची बेचारी का कहना तो आसानी से टल जाता है । पर जहाँ कहीं चार दोस्तों ने किसी मेले या उर्स पर जाने की तैयारियाँ की, चचा के साथ चलने पर आग्रह किया, ज़रा वहाँ की रौनक और धमाधमी की तारीफ़ की और साथ ही ताना दिया—अमाँ जा चुके तुम ! घर से इजाज़त ही नहीं मिलने की । डाँट देंगी बेगम साहबा !' बस तड़प उठे चचा ।

"वाह रे ! वह नेकबख्त तो खुद मुझसे कहती रहती है कि कभी घर से निकला भी करो । और अगर न भी कहती हो तो मैं किसी का बँधा गुलाम हूँ कि जी चाहे और न जाऊँ । भई तुम्हें हमारी ही कसम जो अब जाने का इरादा बदलो ।"

यह सूरते हाल हो तो अल्लाह ने ही कहा है कि इस तरह के हर सफर पर चचा और चची में खटपट हो जाय।

अभी पिछली ही नौचन्दी पर मुन्ने मिर्ज़ा और नौशह मियाँ ने मेरठ चलने की ठानी। चचा से ठहरी उनकी दाँत काटी रोटी। दो चार फ़िकरे जो कसे तो चचा चलने पर आमादा हो गये। शाम को रवानगी का इरादा था। सुबह नाश्ते के समय बातों-बातों में चची से इसका जिक्र किया।

"मुन्ने और नौशह जा रहे थे नौचन्दी में। कहो तो हम भी हो आयें ?"

चची भड़क उठीं, "अल्लाह समझे उस मुन्ने और नौशह से, खुदाई ख्वार कहीं के। कभी कोई नेक राह न दिखाई। मैं कहती हूँ यह तुम्हारी उम्र, बाल खिचड़ी हो गये, खैर से कई कई बच्चों के बाप बन चुके। अभी मेले ठेले का शौक नहीं गया। मुझसे पूछते हैं कि कहो तो हम भी हो आयें। जैसे मेरे ही कहे में तो हैं। कुनबे में शादी-ग़मी के बीसों मौक़े गुज़र गये, कहती रह गई कि वक्त गुजर जाता है, बात रह जाती है। बस एक दो रोज के लिये मुझे ले चलिये मगर हमेशा टाल टाल दिया। ग़ज़ब खुदा का, बाल सफेद हो गये और झूठे बहाने लिख लिख कर भेज दिये। किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल न छोड़ा। आज नौचन्दी के लिये मुझसे पूछने आये हैं कि कहो तो हम भी हो आयें ! शौक से जाओ। मैंने पैरों में बेड़ियाँ डाल रक्खी हैं ? मेरा क्या है। दुनिया कहेगी, बूढ़े मुँह मुँहासे, देखें लोग तमाशे। बासी कढ़ी का उबाल। मुझे तो जब ख़याल होता जो मेरे कहे में होते।"

ऐसे मौकों पर बच्चे बेचारे ज़रूर कोई न कोई कसूर कर बैठते हैं। छुट्टन बेचारा सहन में बैठा मुर्गी के बच्चों को दाना खिला रहा था, चचा की नज़र पड़ गई।

"क्या हो रहा है छुट्टन ? बस सुबह हुई नहीं, और तेरा मुर्गी के बच्चों का खेल शुरू हो गया। तख्ती लिख ली ? सबक़ दोहराया ?

नालायक कहीं का ! साल भर हो गया मौलबी साहब से पढ़ते। अभी तक लिखना नहीं सीखा ? जब देखो मुर्गी के बच्चों का खेल, जब देखो मुर्गी के बच्चों का खेल ! ये होते हैं अशराफ़ के बच्चों के लच्छन ? मुर्गबाज़ बनना है तुझे ? उठ यहाँ से चल, अपनी किताब पढ़।''

इसके बाद चचा इमामी को हुक्का ताजा करने का हुक्म देकर दीवानखाने में चुपचाप जा बैठे।

घन्टे भर के बाद चची ने उधर से गुजरते गुजरते दीवानखाने का किवाड़ खोल कर पूछा—वह क्या सामान जायगा साथ ? बता देते तो बँध जाता।

चचा ने बैठे-बैठे कड़क कर जवाब दिया—मैं नहीं जा रहा।

चची अन्दर चली गईं। बोलीं—यह बिगड़ किस बात पर बैठे। बस इतनी ही बात तो मेरे मुँह से निकल गई न, कि कुनवे से बुलावे आये तो टाल टाल गये, और नौचन्दी जाने की झट पट तैयारी कर ली। तुम्हीं कहो, कुछ झूठ कहा था मैंने ?

चचा ने बिगड़ कर कहा—बस, कान न खाओ मेरे। कह जो दिया, मैं नहीं जा रहा।

चची को भी गुस्सा आ गया। कहने लगीं—नहीं जाते न जाओ, मेरी बला से। रानी रूठेंगी अपना सुहाग लेंगी......और नहीं तो।

यह कहकर चची ज़ोर से किवाड़ बन्द करके अन्दर चली आईं।

ज़रा सी देर में मुन्ने और नौशह आ पहुँचे। दरवाज़े की चिक उठाकर बाहर ही खड़े खड़े बोले—बस बस, बैठेंगे नहीं इस वक्त, पूछने आये थे कि तैयार हो न। कहीं ठीक वक्त पर बहाने बनाने बैठ जाओ। साढ़े चार पर छूट जाती है गाड़ी। जरा इसका ख़याल रहे।

दोपहर तक चचा दीवानखाने में ही बैठे रहे। दे हुक्के पर हुक्का और पान पर पान। दोपहर का खाना भी वहीं मँगवाया। इमामी जूठे बरतन उठा कर चलने लगा तो उससे कहा—देख बीवी से जाकर कह दे कि असबाब बंध जायगा, आप बस नाश्ते का इन्तजाम

कर दीजिये ।

सन्देश भेजकर चचा कान किवाड़ से लगाये सुनते रहे कि क्या जवाब मिलता है । चची सुनकर चुप हो रहीं तो आप किवाड़ खोलकर भीतर आ गये । दो एक बार ज़नानखाने से मर्दाने में और मर्दाने से ज़नानख़ाने में आये गये । कभी रस्ते में थम गये । मुड़ना चाहा, न मुड़े । बढ़े चले आये, फिर एकदम मुड़ गये । खड़े होकर दाढ़ी के बालों में से ठोढ़ी खुजलाई, फिर सीधे अपने कमरे का रस्ता लिया । जरा सी देर के बाद कुरते के अन्दर हाथ डालकर छाती खुजलाते हुए बाहर निकल आये । कुछ देर चबूतरे पर खड़े रहे, फिर गड़ाप से भीतर !

आवाज आई—ओ इमामी ! यहाँ आइयो ।

घर भर के कान खड़े हुए कि सफर की तैयारियाँ शुरू हो गईं ।

"ज़रा जाइयो तो भागकर अल्ला बख्श दर्जी के यहाँ । कहना, मियाँ आज नौचन्दी में जा रहे हैं । अँगरखा सिल गया हो तो दे दे और न सिला हो तो याद करके कह देना, मियाँ कहते थे सिलाई नहीं मिलने की । समझ गया ?"

इधर इमामी विदा हुआ उधर मोदे की बारी आई, "मोदे ! अरे मोदे ! यहाँ आइयो ! जाना जरा मातादीन के यहाँ, परसों उसने वायदा किया था कि आज हमारे कपड़े धोकर दे देगा । उससे कहना, मियाँ आज नौचन्दी में जा रहे हैं । कपड़े धुल गये हों तो देदे । समझ गया ? जाइयो तो झपाक से, और हाँ, सुनना । दो जोड़े हैं हमारे । एक में ग़रारा है और साथ एक अँगरखा है । है है ! वह इमामी चला गया दर्जी के यहाँ, अब क्या करूँ ! यह बुन्दू कहाँ गया ? ओ बुन्दू ! अरे बुन्दू ! जाना तो भाग कर इमामी के पीछे अल्लाह बख्श दर्जी के यहाँ, और उससे कहियो कि एक अँगरखा जो नमूने का दे रक्खा है वह भी देदे । मियाँ नौचन्दी में जा रहे हैं । नया अंगरखा सिला हो या न सिला हो, नमूने का अँगरखा ले लेना । समझ गया ? दौड़कर जा हाँ, तो मातादीन से कहियो कि मियाँ नौचन्दी में जा रहे हैं ।

समझ गया ? दो जोड़े, एक अंगरखा, एक रूमाल, एक बनियाइन, एक इजारबन्द, सब चीजें गिनकर लीजियो। और देखना, रास्ते में कुछ गिरा न देना। देखूँ, तू कितनी जल्दी आता है।''

नौकर काम पर रवाना हो गये तो अब घर के लोगों की बारी आई।

''अरे भई कहाँ छिपकर बैठ रहे तुम सब लोग। काम नजर आया और बस निकली जान। यह नहीं कि मिल मिलाकर खत्म कर दें किस्सा। ओ भई, यहाँ आओ। तुम मेरा बिस्तर उठाकर आओ लल्लू। बन्नो बेटी, जाओ तुम गुसलख़ाने से हमारी साबुनदानी, मंजन की डिबिया और तौलिया ले आओ। छुट्टन ! अरे छुट्टन ! जाना अपनी अम्माँ के कमरे में। वहाँ से हमारा आईना, कंघा और तेल की शीशी उठा ला। सब चीजें लाकर यहाँ फर्श पर रख दो। और यह तुम कहाँ चले दद्दू ? अरे भई, कहा जो है कि ठहरे रहो थोड़ी देर यहीं। जानते हो शाम की गाड़ी से नौचन्दी जा रहा हूँ। काम इतना बहुत है और तुम सरक चले। जाओ मेरा बक्स उठा लाओ और फिर अपनी चची अम्माँ से जाकर कहना, पिछली धुलाई आई थी तो हमारे दो रूमाल आपके कपड़ों में चले गये थे, वह निकाल दें······बन्नो बेटी, ले आईं सब चीजें ? शाबाश, शाबाश ! यहाँ रख दो। पर यह क्या उठा लाईं तुम ? यह मेरी मंजनदानी है ? सामने रक्खी हुई चीज़ नहीं दिखाई देती। अरे छुट्टन, कौन सा आइना उठाये ला रहा है ? भई बड़ा परेशान किया है इन लोगों ने। अरे अहमक़ हमारा आईना, हमारा आईना !''

घन्टे भर की तू तू मैं मैं के बाद कहीं सब चीजें कमरे में जमा हुईं और चचा ने उन्हें बक्स में रखना शुरू किया। सारे नौकर और बच्चे ख़िदमत में मौजूद। चीजें ज्यादा, बक्स में जगह कम। चचा एड़ी चोटी का जोर लगाकर उन्हें ठूँस रहे हैं, पर किसी तरह नहीं समातीं। जोर लगा लगाकर मुँह लाल हो रहा है। माथे से पसीने की

बूँदें टपक रही हैं। ऐसे मौके पर किसी बच्चे को हँसी आ जाना बड़ा ख़तरनाक होता है। चचा चौंक कर मुड़ते हैं, "कौन था यह? नालायक़, बदतमीज़ कहीं के। हँसी की क्या बात थी? कोई तमाशा हो रहा है यहाँ? रेल का वक्त सिर पर आ गया है। और इन्हें हँसी सूझ रही है। निकलो यहाँ से, बाहर जाकर हँसो।"

इधर कमरे में से क़ाफ़ला निकलता है, उधर आवाज़ आती है—अरे कमबख्तो, कहाँ जाकर मर रहे सब के सब। ओ इमामी! अरे ओ बुन्दू! साँप सूँघ गया क्या? यहाँ आकर बक्स का ढकना बन्द कराओ। बैठो इसके ऊपर चढ़कर।

बक्स बन्द हो चुका, तो अब बिस्तर की बारी आई।

"अबे यों नहीं, यों। इस तरह मोड़। अंधे, इधर देख, मैं क्या कर रहा हूँ। अब लपेट, अच्छी तरह दबाकर। जान भी है हाथों में? खा खा कर साँड तो बन गया और बिस्तर नहीं लपेट सकता। अबे इस तरह। यों, बस। अब बैठा रहना ऊपर। हटियो मत। मैं निकालता हूँ रस्सी नीचे से! हा गधे! सारी की-कराई पर पानी फेर दिया।"

यहाँ बिस्तर ही से कुश्ती हो रही थी, उधर मुन्ने मिर्जा और नौशह मियाँ तैयार होकर आ भी पहुँचे। आवाजें आनी शुरू हो गईं—अमाँ चलो, अब क्या हो रहा है अन्दर? आध घन्टा रह गया है, रेल के छूटने में। अरे भई कौन सा महीनों का सफ़र है कि रुखसत होने में घन्टों लग गये? अब निकल भी चुको घर में से। सामान तो भिजवा दो कि टाँगे में रख दिया जाय।

इधर भीतर चचा बिस्तर बाँध रहे हैं, हाथ पाँव फूले हुए हैं और पुकार-पुकार कर हुकुम सुना रहे हैं—अमाँ लल्लू! देखना, वह नाश्ता भी बंध गया? अपनी अम्माँ से कहना एक लोटा और अलमुनियम का गिलास भी निकाल दें। अरे भई दद्दू! किसी से कहो, असबाब बाहर पहुँचाना शुरू करे। है है, वक्त तो बहुत ही थोड़ा रह गया। अरे भई कह दो बाहर, कि बस अभी आया। ज़रा मेरी अचकन

और टोपी खूँटी पर से उतार देना, और अपनी चची से कहना, कुछ रुपये भी सफर खर्च के लिये निकाल दें। अमाँ आ रहा हूँ मुन्ने, आ रहा हूँ। तुम तो हवा के घोड़े पर सवार हो गये। असबाब बाँध रहा था। बस आया।

इतने में चची कमरे में आ गईं। बोलीं—और यह नई वसली की जूती साथ न लेते गये ?

चचा पागलों की तरह मुड़कर देखते हैं तो जूती बंधने से रह गई है।

"अब क्या करूँ ? रेल का तो वक्त हो गया। अमाँ ठूँस भी दो बिस्तर में कहीं। न न, यों तो गिर पड़ेगी। तुम खोल लो बिस्तर। अरे भई जल्दी करो। रेल का तो वक्त हो गया। अमाँ आ रहा हूँ नौशे ! छुट्टन बेटे, बाहर जाकर कहना, असबाब बाँध रहे हैं, अभी आये। अमाँ खोल भी चुको बिस्तर, लाहौल विला कूवत। अरे भई काट दो रस्सियों को; ज़रा सा तो वक्त रह गया है।"

बिस्तर खुला पड़ा था कि चची पूछ बैठीं—कोई मोज़ों की जोड़ी भी रख ली सन्दूक में ?

चचा बिस्तर छोड़ चची का मुँह तकने लगे, "मोज़े ? रख ही लिये होंगे। या खुदा, भई खोलना जल्दी से सन्दूक। तुम बिस्तर बाँधो लल्लू ! यह रही चाबी सन्दूक की। खोलता हूँ। रेल का तो वक्त हो गया। अमाँ दद्दू, जाकर कहना बाहर कि बस मैं आया और अभी आया। बन्नो बेटी, देखना तो ज़रा सन्दूक में मोजे। अरे भाई बिस्तर नहीं बँधा अब तक ? अब कहीं बाँध भी चुको। इस कोने में देखियो, मोज़े होंगे तो इधर ही होंगे। ये रक्खे तो हैं, ख़ाहमख़ाह वक्त ज़ाया करवाती हैं। दूसरे को तो एकदम अहमक समझ रक्खा है। अरे भई, बस बन्द करो सन्दूक। यह सफ़ाई-सलीक़े रहने दो। चीज़ें जैसी हैं अब पड़ी रहें। खुदा के लिये ताला लगाओ तुम। कहाँ गया ताला ! अरे भई ताला कौन ले गया ? किसने उठा लिया ताला ?"

लीजिये, ताले की ढुँढैया पड़ गई। जिसे देखिये आंखें फाड़-फाड़ कर फर्श पर ताला तलाश कर रहा है। इतने में पता चला कि ताला चचा जान के हाथ ही में था।

चचा शेरवानी की आस्तीनों में हाथ डालते हुए ज़नानखाने से निकले तो इन्तज़ार कर करके मुन्ने मिर्ज़ा और नौशह मियाँ स्टेशन पर जा चुके थे।

"अरे इमामी ! लपक कर कोई इक्का तो पकड़। ज़रा आगे बढ़कर देख। पैसे ठीक कर लीजियो। तुम सामान गिनो लल्लू। और हमारे साथ कौन जायगा ? दद्दू, तुम चलना। और तू इमामी ! अरे लो, वह आ गया इक्का। असबाव लादो। तुम सवार हो जाओ दद्दू। तू भी बैठ जा इमामी। पैसे ठहरा लिये न इक्के वाले से ? ले मेरा भाई, अब हवा की तरह चल। नौचन्दी पर जा रहे हैं। रेल का वक्त हो गया है। उड़ कर चल। रह न जायें गाड़ी से। सामान गिन लिये थे दद्दू ? और वह पानों की डिबिया ? है है ! ख़याल ही न रहा। चलो नौशे के पास होंगे पान। अरे भई ज़रा चाल दिखा जानवर की......ऐसे निकम्मे लोग हैं कि खुदा की पनाह। बस ज़रा सा काम हो, बौखला जाते हैं। यह नहीं कि आराम आराम से मज़े मज़े फ़ारिग़ हो जायँ। घन्टों पहले तैयारी शुरू करो। वक्त पर वही झींकना। आजिज़ आ गया हूँ मैं तो।"

किसी न किसी तरह अन्त में स्टेशन पर पहुँचना हुआ। वहाँ कुलियों से बात न ठहर सकी। अच्छी ख़ासी झक झक के बाद बक्स और बिस्तर इमामी के सिर पर रखकर पुल का रुख किया। वहाँ बाबू से मालूम हुआ कि टिकट के बिना रेल के सफर की कोशिश जुर्म है।

चचा लाहौल पढ़ते हुए टिकटघर की तरफ दौड़े। बाबू से मेरठ का टिकट मांगा तो पता चला कि कल सुबह से पहले कोई गाड़ी मेरठ रवाना न होगी।

□

# चचा छक्कन ने एक खत लिखा

विश्वास के साथ यह कहना बहुत मुश्किल है कि चचा छक्कन जब किसी काम में हाथ डालते हैं तो उस वक्त उनकी मानसिक दशा क्या होती है। अपनी क़ाबलियत दिखाने के शौक़ से लाचार होते हैं या केवल परोपकार का भाव उभाड़ता है। ज़रा देर के लिये मान लिया कि दोनों ही बातें होती हैं, अपनी क़ाबलियत जताने का शौक़ भी और परोपकार की भावना भी। तो मैं कहता हूँ एक बार यह होना मुमकिन है, दो बार होना मुमकिन है। एक दो बार न सही, दस बीस बार सही, पर आख़िर दुनिया में तजरबा भी तो कोई चीज़ है। कभी तो ख़याल आये कि ए आदमी ! बैठे बिठाये तुझे जो उबाल उठा करता है तो तूने आज तक कोई काम ढंग से पूरा भी किया ? कहीं कामयाबी भी हुई ? किसी ने तारीफ़ भी की तेरे काम की ? इलाज करने का दावा वह करे जिसे अपनी तजरबेकारी पर भरोसा हो और जो यह न हो तो क्यों ऐसी बात करे जिससे काली हाँडी सिर पर रखी जाय।

अब आज ही की घटना है कि चची को एक दावतनामे का जवाब लिखने की ज़रूरत हुई। :संयोग से उनका हाथ था रुका हुआ। चचा छक्कन रोज़ की तरह फ़ुरसत से बैठे थे। जवाब मुख्तसर सा लिखना था। काम भी जल्दी का था। फिर भला कौन चीज़ उन्हें अपनी सेवाएँ अर्पित करने से रोक सकती थी। इसलिये लिखा आपने जवाब। इसके लिये क्या कुछ इन्तज़ाम हुआ घर में, कैसा हुल्लड़ मचा, और फिर क्या नतीजा निकला इसकी कहानी सुनते ही बनती है।

बात यों हुई कि सुबह के वक्त चची दालान में चारपाई पर बैठी बच्चों को चाय पिला रही थीं। चचा चाय पीकर सहन में कुर्सी पर उकड़ूँ बैठे हुक्का पी रहे थे। एक गाय ख़रीदने की ज़रूरत और उसके फ़ायदे और नुक्सान के व्यक्तिगत और सामूहिक नतीजों के बारे में चची को ज्ञान प्रदान किया जा रहा था। इतने में बाहर दरवाज़े पर किसी ने आवाज़ दी। बुन्दू भागता हुआ गया और एक ख़त लेकर वापस आया। चची प्याली से छुट्टन को चाय पिला रही थीं। खत लाकर उनके पास रख दिया।

इतने में कि प्याली की चाय ख़तम हो और चची ख़त उठायें, चचा ने दस बार पूछ डाला—किस का ख़त है ?......कहाँ से आया है ?......किसने भेजा है ?......क्या बात है ?

चची चिढ़ गईं। बोलीं—तौबा है ! खोलने पाई नहीं और सवालों का ताँता बाँध दिया। मुझे ग़ैब का इल्म तो आता नहीं कि देखे बग़ैर बता दूँ कि किसका ख़त है।

चचा कुछ झेंप से गये, भला साहब ख़ता हो गई कि पूछ लिया। हमारी बला से, किसी का हो। यह कहकर उपेक्षा से सिर घुमाकर जल्दी जल्दी हुक्के के कश लेने लगे।

बुन्दू ने कहा—बेगम साहब, आदमी जवाब के इन्तज़ार में खड़ा है।

यह सुनकर चचा से न बैठा गया, चार पाँच कश लेकर उठ खड़े हुए। कुरते में हाथ डाल पेट खुजलाते रहे। फिर बेतकल्लुफ़ी के अन्दाज़ में टहलते हुए बाहर निकल गये।

चन्द मिनट बाद वापस आये। कुछ देर बेतरतीबी से सहन में टहले। इन्तज़ार कर रहे थे कि शायद चची बुलायें। आख़िर न रहा गया तो खुद ही पूछा—क्या लिखा है मुंसरिम साहब की बीवी ने ?

चची ने चाय की प्याली छुट्टन के मुँह से लगाते हुए बेपरवाही से कहा—रात खाने पर बुलाया है।

चचा का धीरज छूट गया। बोले—क्या बात है, कोई खुशी ?

चची ने किसी कदर सरसरी अन्दाज़ में कहा—बात क्या होती। मीर मुंशी साहब की बीवी मुझसे मिलना चाहती थीं। उन्हें और मुझे दोनों को खाने पर बुला लिया है।

शायद और अधिक इतमीनान करने को चचा बोले—"तो गोया ज़नानी दावत है !" फिर ख़याल आया कि बीवी का कहीं आमन्त्रित किया जाना एक तरह से मियाँ की इज़्ज़त और सम्मान का ही कारण है, चुनांचे इसी भावना के अन्तर्गत मुंसरिम साहब की पत्नी की तारीफ़ के गीत गाने लगे—"बहुत माकूल बीवी हैं। ऐसी मिलनसार बीवियाँ कहाँ नज़र आती हैं आजकल। ज़रूर जाओ दावत में बल्कि मौका हो तो उन्हें भी अपने यहाँ बुलाओ।" साथ ही एक सलाह भी फ़ैसले के रूप में पेश कर दी—बच्चे तो जायँगे ही साथ।

चची ने कुछ बिगड़ कर धीरे से कहा—पड़ोसियों को भी न लेती जाऊँ !

चचा को यह जवाब बुरा न लगा। एक तो चची बोली थीं धीरे से, दूसरे कुछ ज्यादा सीधी बात न थी। पेट सहलाते हुए घूमने लगे। फिर रुक गये। बोले—उनका नौकर जवाब का तक़ाज़ा कर रहा था।

चची ने जवाब में छुट्टन को सम्बोधित किया—कमबख्त। खुदा के लिये कहीं ख़तम भी कर चुक चाय। खेल किये जा रहा है। किस वक्त से पिरिच प्याली लिये बैठी हूँ। न खुद पीनी नसीब हुई है न अभी नौकरों को मिली है। इधर चाय ठंडी हो रही है उधर बाहर से जवाब का तक़ाज़ा चला आ रहा है।

आप समझिये, ऐसा मौक़ा और चचा अपनी सेवाएँ प्रस्तुत करने से रुक जायँ। बोले—हम लिख दें जवाब ?

चची बोलीं—न, बस आप माफ़ ही रखिये। छुट्टी पाकर मैं खुद ही लिख लूंगी।

रोके जाने का कारण चचा क्यों पूछने लगे। बोले—क्या मानी? हम ख़त लिखना नहीं जानते?

चची ने चुप रहना उचित समझा। चचा की कुछ तसकीन न हुई। "अब कोई क़ानूनी दस्तावेज़ तो लिखनी नहीं। दावत मंज़ूर करने का ही ख़त लिखना है न। तो इसका लिखना कौन सा ऐसा पहाड़ खोदना है।"

इतने में जो छुट्टन ने जल्दी से चाय का घूँट भरा तो उसे उच्छू आगया। चाय की कुल्ली चची के कपड़ों पर पड़ी। वह उड़ेल रही थीं पिरिच में चाय। उनका हाथ हिल गया। सारी की सारी चाय कपड़ों पर आ पड़ी। चची "हा नामुराद।" कहती हुई तौलिये से कपड़े पोंछने लगीं। उधर बाहर से आवाज़ आई—क्यों साहब मिलेगा जवाब?

चची ने घबराकर चचा से कह दिया—अच्छा फिर अब तुम ही यह लिख दो कि आ जाऊँगी।

अब क्या था। चचा को मुँह माँगी मुराद मिली। पत्र व्यवहार से सम्बन्धित ज़रूरी सामान जुटाये जाने लगे। हुकुम चलाये जाने लगे—बुन्दू, मेरा भाई! ज़रा लाना तो ख़त लिखने का सामान झपाक से। क्या क्या लायेगा भला? कलम, दावात और कागज़, शाबाश। मगर कौन से काग़ज़? आस्मानी रंग के बढ़िया रूलदार। वह, जिनकी कापी सी है। हाँ ज़रा दिखाना तो अपनी चाल। और सुनियो......चला गया? लिफ़ाफ़ा भी चाहिए होगा। और भई कोई लिफ़ाफ़ा भी तो लाओ। तू आकर ले आ मोदे। पर नीले ही रंग का हो लिफ़ाफ़ा। सन्दूकचे में रक्खे हैं। लकड़ी के सन्दूकचे में। आलमारी में होगा सन्दूकचा। हरी आलमारी में। सुन लिया न? ज़रा फुरती से।

यह तो चचा की आदत ही नहीं है कि एक बार याद करके कह दें कि क्या क्या चीज़ चाहिये है। उधर मोदा गया इधर सोख्ता याद आ गया।

"अरे हाँ, और सोख्ता भी तो लाना है भई। सोख्ता, सोख्ता?

कोई नहीं सुनता। यह इमामी कहाँ गया ? ओ इमामी। अबे ओ इमामी। देखी इस बदमाश की हरकतें। बस काम निकलने की देर है और यह ग़ायब। काम का न काज का, ढाई सेर अनाज का। ज़रा तुम चले जाते मियाँ लल्लू। वह जो हरी कापी है नुस्खों की। वह जिसमें हम नुस्खे नहीं लिखा करते। अजब कूढ़ मगज हो। भई कीमिया के नुस्खे। लाहौल विला......मियाँ कापी, हरी कापी। नुस्ख़ों वाली। खैर, अब तुमने देखी है या नहीं। वह हमारे तकिये के नीचे रक्खी है। उसमें एक सोख्ता है। वह निकाल लाओ। और देखना......अमाँ सुनो, अरे भई लल्लू। ए मियाँ लल्लू। ओ लल्लू के बच्चे। अजब हालत है इन लोगों की। बस ऐसे घबरा जाते हैं जैसे रेल ही तो पकड़नी है। दद्दू, तुम जाकर कहो, सोख्ता न लायें। कापी ही ले आएँ। आख़िर ख़त भी तो किसी चीज पर रखकर लिखा जायगा। हाथ पर रखकर तो मैं लिखने से रहा। और सुनना मेरी बात। वह कहीं हमारा चश्मा भी रक्खा होगा। वह भी ढूँढ़ते लाना।''

लीजिये, एक दो मिनट में घर भर काम में लग गया। एक को कोई चीज मिल गई, दूसरा खाली हाथ चला आ रहा है कि फलाँ चीज नहीं मिलती। कोई कहता है कि फलाँ चीज ताले में बन्द है, कुंजियों का गुच्छा कहाँ है ? गुच्छा ढूँढ़ा जा रहा है। चचा बिगड़ रहे हैं। मूछों से चिंगारियाँ निकल रही हैं।

"आँखें हों तो चीज सुझाई दे। और फिर यह भी तो नहीं कि हम यहाँ खड़े हैं, हमसे आकर कहें कि साहब फलाँ चीज अपने ठिकाने पर नहीं है, कहाँ है ? जासूस के बच्चे, खुद तलाश करके रहेंगे। पूछने में तो इनकी सुबकी होती है। शान बिगड़ती है। फिर अब क्यों आये हो ? ढूँढ़ो खुद जाकर। अपनी जगह पर चीज नहीं तो तुम्हीं बदमाशों ने कहीं की होगी गायब।''

ख़ुदा ख़ुदा करके सारी चीजें जमा हुईं। चचा ने चश्मा लगाया, कुरसी पर बिराजमान हुए। लड़के चीजें लिये हुए इर्द गिर्द खड़े हो

गये। कागज सँभाला, कापी नीचे रक्खी, कलम हाथ में लिया। अब देखते हैं तो उसका निब नदारद !

"हैं, और निब कहाँ है ? लाहौल विलाकूवत, अबे अंधे, इससे लिखूँगा खत ? अबे इससे लिखना होता तो मैं अपनी उंगली से न लिख लेता ? तुझे कलम लाने को क्यों कहता ? मगर यह उतारा किसने इसका निब ? इस बदतमीजी के मानी क्या ? मैं आज मालूम करके रहूँगा, यह हरकत किस नालायक की है।"

बाहर से आवाज आई—अजी साहब, जवाब के लिये खड़े हैं।

चची ये सब देख रही थीं और दिल ही में पेचताब खारही थीं। आवाज सुनकर न रहा गया, बोलीं—खुदा के लिये, अब तुम इस जिरह को बन्द करो और लिखना है तो लिख दो। वह गरीब बाहर खड़ा सूख रहा है। यह कलम नहीं तो मेरा कलम मौजूद है। जा बन्नो, मेरा कलम ला दे।

चचा उस समय जोश में थे और अपने खयाल में एक जरा सी तकलीफ के लिये नहीं बल्कि एक उसूल की खातिर बात को बढ़ा रहे थे। उस वक्त चची पर भी बरस पड़े—तुम्हारी ही शह पाकर तो नौकरों और बच्चों की आदतें बिगड़ रही हैं। यह जरूर इनमें से ही किसी की हरकत है। कोई बच्चा या नौकर हमारे इस कलम से खेलता रहा है और उसी ने इसका निब खोया है। कलम को सब गौर से देखो और सच सच बताओ कि यह हरकत किसकी है ?

इतने में बन्नो चची का कलम ले आई। चचा का आखिरी फिकरा सुनकर उसने कलम पर निगाह डाली तो बोली—अब्बा मियाँ, कल आप ही ने तो इज़ारबन्द डालने को इसका निब उतारा था।

चचा ने घूरकर बन्नो को देखा। कलम को देखा। कुछ सोचा। खँखारकर गला साफ किया। कुर्सी पर पैंतरा बदला। कनखियों से चची पर नजर डाली। कलम बन्नो के हाथ से ले लिया। सिर झुकाकर अँगूठे के नाखून पर उसका निब परखने लगे। बोले—चलो, अब इसी से काम

चल जायगा ।

पहले की अपेक्षा अब आवाज़ बहुत मद्धिम थी । जो लड़का दवात लिये खड़ा था उसे आगे बढ़ने का हुक्म दिया । खत लिखना शुरू किया । सिर-नामा ही लिखा होगा कि बोले—"है है, यह क्या लिख गया मैं !" ख़त का कागज फांड़ डाला । दूसरा मँगवाया । कलम डुबा लिया लेकिन लिखते लिखते रुक गये । बहुत देर तक मजमून सोचते रहे । आखिर फिर लिखना शुरू किया । निब इतनी देर में सूख चुका था । आप समझे दवात में स्याही कम है । दवात में ढेर सा कलम डाल दिया । कलम के कागज पर जाने की देर थी कि स्याही का यह बड़ा धब्बा कागज पर ! लाहौल कहकर उस कागज को फाड़ डाला । तीसरा कागज मँग-वाया । उस पर दो तीन सतरें लिख गये । इसके बाद कलम रोककर जो कुछ लिखा था, पढ़ा । चेहरे पर कुछ चिन्ता की रेखायें प्रकट हुईं । चची की तरफ देखा, खत को देखा और चुपके से फाड़ डाला । धीरे से मोदे से कहा—ख़त के कागजों की कापी ही ले आ ।

कागजों की कापी की कापी आ गई और ख़त का जवाब बेफिकरी से लिखा जाना शुरू हुआ । अब फिर कभी कलम का शिकवा कि निब ठीक नहीं, नया निब है, कभी दवात की शिकायत कि स्याही ठीक नहीं फीकी है । कभी सोख्ता बुरा कि यह सोख्ता है या पतंग बनाने का कागज । हर शिकायत एक नया कागज नष्ट करने की भूमिका । इसी में पौन घन्टा होने को आ गया । बाहर आदमी आवाजों पर आवाजें दे रहा है । उधर चची छुट्टी पा चुकी हैं और यह किस्सा खतम करने का तकाजा कर रही हैं । बार बार कह रही हैं कि खुदा के लिये तुम मुझे दो कलम दवात । मैं अभी दो मिनट में लिखे देती हूँ ख़त । पर चचा अपनी काबलियत की यह तौहीन कैसे बरदाश्त करलें । सिटपिटा गये हैं मगर खत लिखने से बाज नहीं आते । पैतरे पर पैतरा बदल रहे हैं और काग़ज़ पर काग़ज़ रद्दी किये चले जा रहे हैं ।

"मैं क्या करूँ । न कलम ठिकाने का न दवात ठीक, लिखूँ अपने

सर से ? इधर ये सब बलाएँ मेरे सर पर आन चढ़ी हैं। कमबख्तो ! खुदा के लिये परे हटकर खड़े हो। मेरा दम उलझने लगा है। भानमती का तमाशा तो हो नहीं रहा कि पिले पड़ रहे हो। कभी देखा नहीं, खत कैसे लिखा जाता है ?......अच्छा भई सुन लिया। जरा दम लो...... खाली तो बैठे नहीं। जवाब ही लिख रहे हैं।......अरे भई, खुदा के लिये दवात इधर लाओ। अब मैं हर बार कुरसी पर से उठकर डुबाऊँ ? ...इन्होंने और मेरे आये हवास गायब कर दिये हैं। हथेली पर सरसों जमाना चाहती हैं। न जाने कहाँ की अर्जीनवीस हैं कि दो मिनट में जवाब लिख लेंगी। आखिर दावत मंजूर करनी है। कुछ टका सा जवाब तो देना नहीं कि दो हर्फ लिखकर किस्सा निपटा दूँ।......(बाहर खड़े आदमी से) अरे भई आ रहा है जवाब। तुझे काम है तो हमें काम नहीं है......है है......ए लो। अब नीचे अपना नाम लिख गया। मेरी उम्र जोरू की तरफ से खतों का जवाब लिखने में तो गुजरी नहीं कि इन बातों का ख्याल रहे।......(दवात लिये खड़े लड़के से) मैं थप्पड़ मारूँगा अगर दवात फिर परे हटाई। एक जगह हाथ ही नहीं रखता नालायक, बेहूदा कहीं का। काम चोर निवाले हाजिर !''

अब तफसील कहाँ तक लिखूँ। पूरे डेढ़ घन्टे में खत खतम हुआ और उसे जल्दी जल्दी बन्द करके चचा ने बाहर नौकर के हवाले किया और उसे भी एक छोटा सा लेक्चर पिलाया, ''यों दूसरों के घरों पर जाकर जल्दी मचाना बड़ी बदतमीजी की बात है। खत लिखना कोई मजाक नहीं है। ऐसा ही सहल काम होता तो तुम सर गाड़ी पैर पहिया करके रोजी क्यों कमाते, आज कहीं मुन्शीगीरी न कर रहे होते ?...... खैर अब ज्यादा बहस की जरूरत नहीं। तुम्हें क्या पता तुम्हारे मियाँ लिखने से पहले कै घन्टे सोच-बिचार करते हैं।''

ख़त देकर चचा घर में आये। खुश थे कि देर हुई तो क्या हुआ, ख़त लिखा तो गया। इतमीनान से हाथ मलने लगे। चची भरी बैठी थीं। बोलीं—ख़ाली हाथ मलने से क्या होगा। साबुन मलो तो उँगलियों

की स्याही छूटे।

चचा ने उँगलियों को देखा तो सचमुच काली स्याह हो रही थीं। अभी कुछ बोलने न पाये थे कि चची ने एक और फ़िक़रा कसा—ख़ैरियत गुज़री कि भंगन के आने से पहले ख़त लिख लिया गया। नहीं तो उसे भी ख़बर देनी पड़ती कि दोबारा आये, मियाँ ने आज एक ख़त लिखा है।

चचा ने कनखियों से सहन को देखा : जिस कुर्सी पर बैठकर ख़त लिखा था उसके चारों तरफ रद्दी कागज़ की पुड़ियाँ बिखरी पड़ी हैं। कुछ कहना चाहा, पर फ़िक़रा मुँह में ही रह गया। अनसुनी कर गुसलख़ाने में घुस गये। हाथ धोकर मर्दाने में जा बैठे। भंगन आकर सहन साफ़ कर गई तो अन्दर आये। हुक्का भरवाया और बैठकर पीने लगे। चची की बातें दिल में खटक रही थीं। उनको सुनाने के लिये अपने आपको ही सम्बोधित कर बोलने लगे—एतराज करने को सब तैयार हैं। इस फूहड़ घर में जहाँ न कोई चीज़ अपने ठिकाने पर रहती है न कोई नौकर ढंग का मौजूद है, कोई इससे जल्दी ख़त लिखकर मुझे दिखाये तो मैं जानूं। और ख़त लिखने का क्या है। ख़त चाहो तो मिनट भर में लिख लो। मगर वह ख़त क्या, जिसका न इमला सही न जबान दुरुस्त। ख़त वह कि जिसको लिखा जाय वह पढ़कर झूमने लगे और उसे यादगार के तौर पर सँभाल कर रक्खे।

चची खूब जानती हैं कि कैसे मौकों पर जल्दी सुलह-सफ़ाई कर लेनी चाहिये। मालूम था कि बात जल्दी न भुला दी तो सारे दिन ऐसी ही जली-कटी सुनाते रहेंगे। बोलीं—तो यह कब कहा मैंने कि जवाब अच्छा न लिखा गया होगा।

बस खुश हो गये चचा। कहने लगे—वह तो उनके नौकर को जल्दी पड़ी थी। नहीं तो मैं तुम्हें पढ़कर सुनाता, तब तुम दाद दे सकतीं। रात को दावत पर मुंसरिम साहब की बीवी ख़त के बारे में कुछ कहें तो मुझे बता ज़रूर देना। वैसे चाहे उनसे यह न कहना कि

हमने लिखा था। बहरहाल तुम्हें अख़तियार है।

लेकिन मजा तब आया जब दोपहर को मुंसरिम साहब की बेगम के यहाँ से फिर एक लिफ़ाफ़ा आया जिसमें चचा छक्कन का लिखा हुआ ख़त रक्खा था और साथ ही इस मजमून का एक रुक्का था—

"प्यारी बहन,

शायद गलती से किसी और के नाम का ख़त मेरे नाम के लिफ़ाफ़े में रख दिया गया। वापस भेज रही हूँ। मेहरबानी करके नौकर से यह कहला भेजिये कि आप रात को तशरीफ़ ला सकेंगी या नहीं ?"

चची अभी मुंसरिम साहब की बेगम का ख़त पढ़ ही रही थीं कि चचा छक्कन ने लपक कर उनके हाथ से वह लिफ़ाफ़ा ले लिया जिसमें उनका ख़त बन्द था। झपट कर बाहर गये और नौकर जो ख़त लेकर आया था उससे ज़ोर से बोले—"जाओ भाई जाओ। कह देना कि रात को आठ बजे बेगम साहब पहुँच जायँगी···ख़त···? ख़त की कोई ज़रूरत नहीं, बस ऐसे ही कह देना।" और जब नौकर चला गया तो आप ही आप बड़बड़ाने लगे—ख़त मांग रहा है ! पूछो तुम्हारे घर में ख़त पढ़ने और समझने की क़ाबलियत भी है किसी में ?········· मैंने साफ साफ लिख दिया था कि······और फिर चचा मर्दाने में जाकर बैठ गये और लिफ़ाफ़े में से अपना खत निकाल कर पढ़ा। एक बार चुपके से दरवाज़े की ओर देखा और फिर जल्दी से लिफ़ाफे सहित ख़त के टुकड़े टुकड़े कर डाले और पहले तो रद्दी की टोकरी में डाल दिया और फिर कुछ सोचकर उठे और आधे टुकड़े मुट्ठी में लेकर खिड़की से बाहर फेंक दिये।

अब चचा को कुछ इतमीनान हुआ और घर में गये कि पानों की डिबिया ले लें मगर चची ने पूछ ही लिया—ख़त में क्या लिख दिया था। ज़रा दिखाइयेगा तो ख़त।

और चचा फिर कमरे में जाने को तैयार हो गये। बोले—जब वह नहीं समझ पाई तब तुम क्या खाक समझोगी। औरतें सभी कम-

अक्ल और नासमझ होती हैं। बल्कि मैं तो अब इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि मुंसरिम साहब की बीवी इस क़ाबिल नहीं हैं कि तुम उनको यहाँ बुलाओ बल्कि अगर मैंने खुद नौकर से न कह दिया होता तो तुम्हें भी यह राय देता कि तुम न जाओ।

चची चाहती थीं कि उन्हें कुछ जवाब दें मगर चचा फिर झट बाहर की बैठक में चले गये और आवाज़ लगाई—किसी लड़के से पान भिजवा दो।

□

# जिस दिन चचा छक्कन की ऐनक खोई गई

जिस दिन चचा छक्कन की ऐनक खोई जाने की दुर्घटना हुई, उस दिन मुँह अँधेरे से वे बड़े ताव में थे। ऐसी हालत में अगर उन्हें अपनी झुंझलाहट उतारने का मौका मिल जाता तो फिर उनका दिल हर तरह के गुस्से से साफ़ और आईने की तरह स्वच्छ हो जाता। लेकिन अगर किसी संयोग या मजबूरी से मन का गुबार न निकाल सकते तब जरूर उन्हें घन्टों कल नहीं पड़ती और गुस्से के रेले बार-बार आकर ऐसा बेध्यान करते कि चचा आपे में न रहते। यही कारण था कि उस दिन ऐसी ही बेध्यानी में अपनी ऐनक खो बैठे। उसके खोये जाने की दुर्घटना का वर्णन करने के लिये सुबह की उन घटनाओं का हाल जानना जरूरी है जिन के कारण चचा इतने तप गये थे।

सच पूछिये तो उस दिन चचा कि तुनुक-मिजाजी का कोई कसूर न था। ताबड़ तोड़ बातें ही ऐसी हुईं जिन पर किसी भी भले आदमी को गुस्सा आये बिना नहीं रह सकता था। आप सोचिये कि कड़ाके का जाड़ा हो, सुबह के तीन बजे का वक्त, बाहर कोहरा पड़ रहा हो, गर्म-गर्म लिहाफ़ में मीठी नींद ख़र्राटे ले रही हो और कोई आदमी बड़ी ही बेदर्दी से कुंडी पीट-पीट कर नींद हराम कर डाले और रसीद न दिये जाने पर भी अपने इस आपत्तिजनक काम से बाज़ आने की ज़रूरत न समझे तो आप ही ईमान से कहिये कि गुस्सा आने की बात है या नहीं ?

आख़िर चचा को लिहाफ़ में से बाहर निकलना पड़ा। कनटोप

पहना, रजाई ओढ़ी, खुले सहन में से होकर सू-सू करते हुए दरवाज़े पर पहुँचे। कुन्डी खोली। देखते हैं तो खाँ साहब का नौकर। चचा ने बिगड़ कर पूछा — अबे पाजी, तू इस वक्त ?

वह बोला — खाँ साहब के पेट में दर्द है। सेंक के लिये रबड़ की थैली माँगी है।

खाँ साहब खुद थैली लेने आ गये होते तो दूसरी बात थी। लेकिन ऐसे वक्त किसी नौकर से दो चार होना और शिष्टाचार का ध्यान रखना, सच तो यह है कि बड़ी टेढ़ी खीर है। चचा ने थैली तो ला दी लेकिन खाँ साहब की तन्दुरुस्ती और दर्द के बेमौक़ा उठने पर एक संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित टिप्पणी किये बिना न रह सके।

नौकर कमबख्त की हिमाक़त देखिये कि थैली के साथ आपस की ये बातें भी खाँ साहब तक जा पहुँचाईं। चचा दोबारा लेटने न पाये थे कि कुंडी फिर पिटनी शुरू हो गई। बहुत देर तक अनजान बने रहने पर भी गोलाबारी बन्द न हुई तो इसके सिवा चारा ही न दिखाई पड़ा कि कुछ जले कटे शब्द कह कर दिल का गुबार निकालें और लिहाफ ऊपर से उलट डालें।

खून के से घूंट पीते हुए कुंडी खोली। पर ज़बान अभी खोलने भी न पाये थे कि नौकर ने तुरत हाथ में थैली थमादी। बोला — खाँ साहब ने कहा है कि इसे अपने पास अंडे देने दीजिये, हम बोतल से काम निकाल लेंगे, और अब कभी हमसे पालिश की डिबिया मँगाकर देखियेगा !

जाड़ों में अँधेरे मुँह बिस्तर से बाहर निकलवाना और नौकर के हाथ तहज़ीब से गिरी हुई बात कहलवाकर भेजना, आप ही ईमान से कहिये कहाँ की शराफत है ? मारे गुस्से के चचा की नींद हराम हो गई। लेटे तो मगर बराबर बड़बड़ाते हुए करवटें बदलते रहे।

"जैसे उनके बाप की मीरास में मुझे रबड़ की थैली मिली थी... और मिज़ाज तो देखो...कहता है कि अपने पास ही अंडे देने दीजिये।

...मुर्गी का...धमकी देता है कि पालिश मँगा कर देखियेगा...जैसे शहर भर में यही तो एक मोची रह गया है !''

किसी करवट नींद न आई तो सोने का इरादा ही बदल दिया। उजियाला होने तक हुक्के से ग़म ग़लत करने की ठानी। नौकर चाकर सो रहे थे। चिलम ले, खुद बावर्चीखाने का रुख़ किया। गुस्सा उसी तरह मन में चुटकियाँ ले रहा था,...''आख़िर घर है, कोई खैराती अस्पताल तो है नहीं, जिस वक्त चाहा, सोतों को बेआराम किया और रबड़ की थैली माँग ली। चन्दे की थैली है जो यह बदमिज़ाज कहता है कि अपने पास ही अंडे देने दीजिये।''

रसोई-घर में जाकर देखते हैं तो संयोग से चूल्हा ठंडा ! न जाने, चची रात को भूभल में लकड़ी दबाना भूल गई थीं या दबी हुई लकड़ी जलकर राख बन गई थी। चचा का गुस्सा और भड़क उठा—घर-गिरस्ती करने चली हैं, आग तक का इन्तजाम ठीक रखने की फ़ुरसत नहीं और फिर हर वक्त की यह रट कि मैं यह करती हूँ, मैं वह करती हूँ, मैं काम से मरी जाती हूँ। हालत यह है कि घर में पालिश की डिबिया तक मँगा कर रखने का होश नहीं, जरूरत हो तो पड़ोसियों के यहाँ से पालिश मँगाई जाती है। और उस कमीने को देखो कि पालिश क्या दी, गोया हातिम की कब्र पर लात मार दी; जौ बराबर पालिश ले ली तो बदले में उन्हें रबड़ की थैली देदो...कमीना कहीं का...।

चचा बकते-झकते हुए उठ खड़े हुए। अन्दर चले, सहन में पहुँच कर ध्यान आया कि हुक्के के बिना सुबह करना दुशवार है। खुद ही आग सुलगानी चाहिये। लौट गये, दो कदम भी न चलने पाये थे कि फिर लौटने की ठान ली। फूँकने और आग जलने के साधन इकट्ठा करने के कष्ट का ध्यान आगया था, मगर दालान में पहुँचने के बाद हुक्के की खाहिश ने ऐसा मजबूर कर दिया कि रसोई घर में पहुँचे और आग सुलगाने की ठानी। बड़बड़ाते हुए इधर उधर से काग़ज़, चिट्ठियाँ और रस्सी के टुकड़े जमा किये, उन पर कोयले रखकर दिया-

सलाई जलाई और फूंकें मार मारकर और जले दिल के फफोले फोड़ फोड़ कर आध घन्टे की मेहनत से कहीं कोयले दहकाये। लेकिन अब आप चिलम भरने के लिये तम्बाकू के डिब्बे को जो देखते हैं तो खाली ! डिब्बा उठाकर जमीन पर दे मारा, "देखी इसकी हरकत ! जी में आता है हरामखोर का कीमा करके रख दूँ। हज़ार ताकीद करो, पर इन नौकरों के कान पर जूं तक नहीं रेंगती। और उस बदमाश को देखो। सुबह सुबह निजी बात जाकर खाँ साहब से कहदी। कोई पूछे कि मैंने खाँ साहब के खैराती अस्पताल में भरती हो जाने की बात क्या इसलिये कही थी कि जाकर उनके सामने दोहरा दे ! तुझे रबड़ की थैली दी, तू चुपचाप जाकर उनके हवाले करदे। तुझे दूसरों के किस्सों से क्या मतलब ? और फिर उन नवाब साहब का मिज़ाज ! कहते हैं—थैली को अपने ही पास अंडे देने दीजिये।"

थैली के अंडे याद आ जाने से गुस्से का एक नया रेला आया। जलकर उठ खड़े हुए। वहाँ पहुँचे जहाँ बुन्दू सो रहा था। सोते हुए बुन्दू के एक चाँटा दिया और बरस पड़े—हरामखोर ! बदमाश !! हजार दफे नहीं कहा कि एक चिलम का तम्बाकू बाकी रहे तो और तम्बाकू ले आया कर, मगर लातों के भूत भला बातों से मानते हैं ?

बुन्दू "हाय हाय।" और "मियाँ जी मियाँ जी।" करता हुआ उठ बैठा। चची भी जाग गईं। जूती पहनती लपक कर चचा के पास पहुँचीं, "क्या हुआ ? क्या हुआ ? क्यों सुबह सुबह बेचारे पर बरस पड़े ?"

आग के सिलसिले में चची पर भी गुस्सा था। चचा गुस्से से गर्दन मोड़ कर बोले— बस, इस मामले में तुम कुछ न बोलो।

बुन्दू बिसूरता हुआ बोला—रक्खी तो हुई है तम्बाकू।

चचा ने उसे अधिक न बोलने दिया—तो हम अंधे हैं !

चची ने फिर दख़ल दिया—रात ही तो इसने तम्बाकू के लिये मुझसे चार पैसे लिये हैं।

चचा ने चची को कुछ जवाब न दिया। झुक कर बुन्दू का कान पकड़ा और उसे खड़ा कर लिया। बोले—दिखा चलकर कहाँ है तम्बाकू। तम्बाकू के नाम से पैसे लेकर रेवड़ियां उड़ती हैं। बदमाश ! रात खा नहीं रहा था रेवड़ियाँ ? इसी वक्त पैदा न किया तम्बाकू तो मेरे हाथों जीता न बचेगा।

बुन्दू ने रसोई घर में पहुँच कर ताक़ में से तम्बाकू का डिब्बा निकालकर चचा के हाथ में थमा दिया। चचा मिनट भर डिब्बे को हाथ में लिये चुपचाप देखते रहे। तम्बाकू से भरा हुआ था। फिर गोया अपनी उस खामोशी की कसर निकालने की ग़रज से एक थप्पड़ और बुन्दू को रसीद किया। "अबे ताक़ में तम्बाकू ? तम्बाकू रखने की जगह ताक़ है ? दूकान ही में न रख आया हरामखोर ? यह जगह होती है तम्बाकू रखने की ?"

बुन्दू आँसू पोंछते हुए बोला—बीबी जी ने कहा था।

चचा खिसियाने होकर और गरजने लगे, "अबे बीबी जी के बच्चे, तुझे खुद खयाल न आया कि जरूरत होगी तो ताक़ में कहाँ तलाश करते फिरेंगे !"

बुन्दू ने सिस्कियाँ लेते हुए जवाब दिया—नीचे बिल्लियाँ गिरा देती थीं।

मगर चचा की दलीलें कहाँ ख़तम होती हैं। बोले—बिल्लियाँ गिरा देती थीं ! बातें सुनो बदमाश की, तम्बाकू न हुआ दूध हो गया कि बिल्लियाँ गिरा देती थीं।

चची दालान में आ खड़ी हुई थीं। गुस्से को दबा कर बोलीं—हो चुकी तफ़तीश ?

चचा सर झुकाये बड़बड़ाते वापस आ रहे थे। चची की बात सुन झुंझला कर बोले—तुम्हारी ही शह ने नौकरों को सिर पर चढ़ा दिया है।

"कि तम्बाकू का डिब्बा ताक में रखने लगे हैं ?"

"हमें कैसे मालूम हो सकता था कि तम्बाकू का डिब्बा ताक में

रक्खा है ।''

''अक़्ल से काम लेकर।''

चचा ने कुछ कहना चाहा। बात करने के लिये दोबारा साँस भरी मगर फिर 'सिर्फ़ नाक़िसुल अक्ल' (बुद्धिहीन) कहने पर ही संतोष किया और जल्दी से बाहर निकल गये।

बस ये बातें थीं जिनके कारण चचा उस दिन ताव में आ गये थे। रबड़ की थैली का किस्सा, आग न होना, तम्बाकू ताक में से निकल आना, बुन्दू को पीटना, चची से झड़प, ये सब ऐसी बातें न थीं जो दिमाग़ी सन्तुलन पर असर डाले बिना रह सकतीं। सुबह से जो दीवान खाने में घुसे तो घन्टों बाहर निकलने का नाम न लिया। चची ने चाय तैयार होने की खबर भेजी तो इमामी को हाँ नहीं कुछ जवाब न दिया। गुम सुम खड़े सामने घूरते रहे। राह देख देख कर चची ने चाय कमरे में भिजवा दी पर आपने लौटा दी, साथ ही कहला भेजा कि इसे भी ताक़ में रख दें।

बस दीवान खाने में टहले जा रहे थे। मुँह ही मुँह में कुछ बोल भी रहे थे। कभी कभी हाथ और सर इस ज़ोर से हिलाने लगते जैसे पंचों के सामने अपने तलाक के दावे के कारण बयान कर रहे हैं और अपने कारणों की ताक़त और सच्चाई पर अड़े हैं। ''नौकरों के सामने क्या, पड़ोसियों तक में मुझे रुसवा कर डाला है, नहीं तो इस पठान की ताक़त थी कि पालिश का ताना दे जाता.........आख़िर कोई हद भी है......अब नहीं......इधर की दुनिया उधर हो जाय मगर इनकार ...जब देखो नौकरों की तरफ़दारी......जब देखो नौकरों की तरफ़दारी ज़िन्दगी तंग कर डाली......आया था ताक़......ताक़ का बच्चा... ताक़ में पालिश की शीशी मँगाकर न रक्खी गई......शीशी होती तो मैं क्यों मँगवाता उस भड़ुए से पालिश, मेरी अक्ल मारी गई थी...... जौ बराबर पालिश लेकर रबड़ की थैली उन्हें दे डालो !......हैं तो बड़े चालाक की......।''

सूरज सर पर आ गया तो न जाने भूख और हुक्के की तलब से बेचैन होकर या वैसे उकताकर आपने एक दम बाहर जाने की ठहरा ली। मगर अब तक नहाये न थे। गुसलखाना अन्दर था। अन्दर कैसे जायँ ? दो एक बार शीशों में से झाँक कर देखा कि अन्दर क्या सूरते हाल है और चची क्या कर रही हैं। अफ़सोस कि उनके चेहरे पर दुख या चिन्ता के कोई चिन्ह न थे। बावर्चीखाने के धंदों ने उन्हें घेर लिया था। चचा चढ़के दरवाज़े के पास से पलट आये। कुछ देर गुम सुम खड़े रहे। फिर नियत बाँध बड़ी बे तकल्लुफी के अन्दाज़ से अन्दर आये और नाक की सीध में गुसलखाने की तरफ़ चले। चाहते थे कि किसी की नज़र न पड़े और ग़ुसलख़ाने में घुस जायँ और नहाने के बाद कपड़े बदल कर चुपचुपाते हमेशा के लिये बन्ने मियाँ के यहाँ चले जायँ कोई हज़ार बुलाये, लाख मिन्नत खुशामद करे हरगिज़ हरगिज़ वापस न आयें। लेकिन संयोग तो देखिये......सब की निगाह से बचकर गुसल-खाने तक तो पहुँच गये पर दाख़िल होने लगे तो सर ने दरवाज़े से टक्कर खाकर बताया कि चटकनी लगी हुई है। उधर अन्दर से दद्दू ललकारा—नहीं मानेगा छुट्टन, मैं अम्माँ से जाकर कह दूँगा कि छुट्टन मुझे नहाने नहीं देता।

छुट्टन देर से ग़ुसलख़ाने का दरवाजा खटखटा खटखटा कर दद्दू को सता रहा था। दद्दू ने उसके धोखे में अन्दर से चचा को डपट दिया। इस पर छुट्टन की तो हँसते-हँसते बुरी हालत हो गई। चचा ने सर सहलाते हुए गुस्से से छुट्टन को देखा। वह हँसी के मारे दोहरा होता हुआ सहन की तरफ भागा। इधर चोट की तकलीफ और शर्मिन्दगी, उधर अपने घर में आने का ऐसे नामुनासिब ढंग से एलान, चचा गुस्से में छुट्टन की तरफ लपके। वह दौड़कर चची से जा लिपटा। चची हंडिया में प्याज कड़कड़ा रही थीं। उन्होंने घूमकर चचा को देखा। अब क्या हो ? मुजरिम सरहद पार हो चुका था। चचा गुस्से में लाल पीले होते हुए चुपचाप वापस हो गये। वापस आकर धमाधम गुसलख़ाने

का दरवाज़ा खटखटाना शुरू किया—निकल बाहर......अभी निकल ......कह जो दिया कि अभी निकल..........जैसा है वैसा ही निकल .........आता है या बताऊँ मैं ?.........साबुन लगा है तो हुआ करे......।

दद्दू साबुन मुँह पर मले तौलिया लपेट बाहर निकल आया । चचा ने एक चाँटा उसके रसीद किया । "पाजी कहीं का ! निकल ही नहीं चुकता था । अबे कहा जो था हमने, जैसा है वैसा ही निकल आ, चिखवाये चला जाता था ।"

एक चाँटा और रसीद करके चचा ग़ुसलख़ाने में घुस गये । दन्न से दरवाज़ा बन्द किया और खट से चटकनी लगाई । अन्दर चचा ग़ुसलख़ाने में नहाने में लगे थे और दरवाजे पर दद्दू खड़ा रीं रीं कर रहा था । चची बावर्चीख़ाने में अनजान बनी काम में लगी थीं । थोड़ी थोड़ी देर में ग़ुसलख़ाने में से चचा की आवाज़ सुनाई दे जाती थी—"तू नहीं होगा चुप ? देख, मैं कहता हूँ सरक जा यहाँ से । अच्छा न होगा...... मैं दरवाज़ा खोल कर इतनी लगाऊँगा कि अम्माँ रबड़ की थैली से सेंक करती फिरेंगी ।"

थोड़ी देर बाद चची चुपके चुपके बावर्चीख़ाने से उठीं और दद्दू के पास पहुँच कर बोलीं—क्या हुआ लाल ? क्यों रो रहा है ? आ जा, तू मेरे पास आ जा ।

चचा की ललकार बन्द थी । पानी गिरने की आवाज़ भी अन्दर से न आ रही थी । न जाने बदन पर साबुन लगाने में मसरूफ़ थे या चची की बात सुनने को कान किवाड़ से लगा रक्खे थे । दद्दू ने सिस्कियाँ भरते हुए अपने बेक़सूर होने की दास्तान सुनाई । चची उसकी उँगली थाम कर बोलीं—चल, तू मेरे पास चल । उनके सर पर तो सुबह से भूत सवार है ।

चची दद्दू को साथ लेकर चल दीं । चची का यह जुमला सुनकर अन्दर चचा छक्कन पर न जाने क्या बीती । लेकिन जब नहा धोकर बाहर

निकले तो चेहरा तमतमाया हुआ था, और चेहरे से गुस्सा झलक रहा था। गीले बदन पर मैला पैजामा पहने निकल पड़े थे। दर असल बड़ा तौलिया खुद साथ ले जाना भूल गये थे। छोटा तौलिया बाँधकर दद्दू बाहर निकल आया था। गुसलख़ाने में से आवाज़ देकर बड़ा तौलिया मांगना और अपनी ज़रूरतमंदी की आवाज़ चची के कान तक पहुँचाना शायद उनकी शान के खिलाफ था। सीधे उस कोठरी में चल गये जहाँ कपड़ों का बक्स रक्खा रहता था।

दस मिनट के बाद चचा कपड़े पहन कर बाहन जाने लगे तो ऐनक का क़िस्सा पेश हो गया। एक पाँव ड्योढ़ी के अन्दर था एक बाहर कि अचानक ख़याल आया कि नहाने के बाद ऐनक नहीं लगाई। ऐनक लेने ग़ुसलख़ाने में गये। ऐनक उतारकर खिड़की में रखना कुछ कुछ याद था, लेकिन वहाँ पहुँचकर देखा तो अब मौजूद न थी। ताक़ों पर निगाह डाली। उनमें भी न थी। घड़ौंची को देखा, फर्श और नाली का मुआयना किया, कहीं नज़र न आई। सोचा, शायद मैले कपड़ों के साथ कोठरी में चली गई। वापस कोठरी में पहुँचे। कपड़े लाकर तख्त पर रक्खे थे। ऐनक तख्त पर भी न थी। हर कपड़े को एहतियात से अलग करके उठाया। टटोल टटोल कर देखा, झटका, कहीं भी नहीं।

"गई कहाँ ?" नीमदायरा सा बनाते हुए खड़े घूमते रहे। सारे कमरे पर निगाह डाली कि बेख़याली में किसी और जगह न रख दी हो। पर ऐनक न दिखाई पड़ी। लपके हुए फिर गुसलख़ाने में पहुँचे, फिर खिड़की को देखा। खिड़की के नीचे नाली थी। उकड़ूँ बैठकर उसका मुआयना भी कर लिया। उसे काफी न समझकर बाहर गये। गुसलख़ाने से सड़क तक सारी नाली देख डाली पर न मिली। वापस फिर गुसलख़ाने में पहुँचे। गर्दन घुमा घुमाकर ताकों को देखा, घड़ौंची के नीचे देखा, घड़े जगह से सरकाये, कहीं नज़र न आई। जरा देर परेशानी की हालत में खड़े सिर खुजाते रहे।......"अजीब तमाशा है !" लपके हुए फिर कोठरी में पहुँचे। मैले कपड़े बारी बारी

से इस जोर से झटके कि ऐनक क्या सुई भी लगी होती तो अलग होकर गिर पड़ती। "लाहौल विलाक़ूवत...!" एक दम एक नई बात सूझी। भागे हुए फिर गुसलख़ाने में पहुँचे। लोटे उठाकर देखने से रह गये थे, वहाँ भी कुछ न निकला। "आखिर हुई क्या?" गर्दन बढ़ाकर इतमीनान के लिये एक नजर लोटों के अन्दर भी डाल ली, यह सोच कर कि खुदा की कुदरत सब कुछ कर सकती है, शायद यहीं मिल जाय, मगर कुछ पता न चला। दाढ़ी खुजाते हुए फिर कमरे में आ गये, "यानी यह किस्सा क्या है?" ज़रा देर खोये खोये खड़े रहे, फिर तख्त पर बैठ गये। सिर झुकाकर एक नज़र तख्त के नीचे भी डाल ली। अचानक ख़याल आया कि शायद ऐनक लगाकर गुसलख़ाने में गये ही न थे। वहाँ ऐनक उतारकर रखने का यों ही वहम है। चुपचाप बैठकर सुबह से उस वक्त तक के वाक़यात पर गौर करने लगे कि शायद इस तरह किसी मौके पर ऐनक उतारना और कहीं रखना याद आ जाय। सुबह की पहली घटना के साथ ही खाँ साहब का ख़याल आ गया। जलकर बेअख़तियार मुँह से निकला—"ऊँह, रबड़ की थैली।" उठ खड़े हुए। सोचा, ऐनक कहीं बिछौने में ही न रह गई हो। दालान में जाकर सारे लिपटे हुए बिस्तर उलट पुलट डाले। उनमें से अपना बिस्तर ढूँढ़कर निकाला। उसकी एक एक चीज़ देखी, झटकी, तकियों में टटोला पर ऐनक का कुछ पता न चला। निराश होकर एक बार फिर गुसलख़ाने में पहुंचे कि शायद इस बीच में ऐनक सैर सपाटे से फ़ारिग़ होकर वापस आ गई हो, मगर नहीं आई थी। मजबूरन कोठरी में तख्त पर खोये खोये जा बैठे। फिर बोले—"यानी हद हो गई।" एकदम दीवानख़ाने में देखने का ख़याल आया। तेज़ तेज़ क़दम उठाते वहाँ पहुँचे। मेज़ें, कुरसियाँ, फ़र्श, ताक़, एक एक चीज़ देख ली। ऐनक कहीं हो तो मिले। चचा खिसियाने से हो चले, "क्या वाहियात है!" जी तो बहुत चाहता था कि नौकरों और बच्चों को मदद के लिये पुकारें लेकिन हालात इजाज़त न देते थे। चची से

नोक झोंक होने के बाद नौकर और बच्चे चची की रैयत मालूम होने लगते थे। उनसे मदद माँगने में हेठी होती थी। परेशानी की हालत में इधर-उधर फिर रहे थे। दिमाग़ एक ही उधेड़बुन में लगा था कि और किस जगह गये थे। हो सकता है ऐनक वहीं छोड़ आये हों। अचानक बावर्चीखाने की याद आई, वह ताक़वाला वाक़या। बुन्दू की हिमाक़त, चची का नामुनासिब रवैया। दिल ने कहा, ऐनक जरूर बावर्चीख़ाने में है। आग सुलगाते हुए उतार कर रख दी। उठाने का ख़याल न रहा। एक चोर निगाह चची पर डाली। वह हंडिया में कफ़गीर चला रही थीं, "यह ऐसी चुप और अनजान सी क्यों बनी बैठी हैं! गोया कोई बात ही नहीं। इस तरफ नज़र नहीं उठातीं! चेहरे पर क्या पारसाई और शहीदपन बरस रहा है!" एकदम पहेली हल हो गई, "भटियारा है नमाज़ी, तो जरूर है दग़ाबाज़ी! छिपा रक्खी है ऐनक, जब ही तो लापरवाही का यह हाल है, सोचा होगा कि आख़िर हारकर, झख मारकर माँगने आयेगा।" चचा जलकर अन्दर चले गये। किवाड़ के शीशों में से ज्यादा गौर से चची को देखना शुरू किया। चची ने संयोग से एक नजर दरवाजे की तरफ डाली। चचा का शक यकीन बन गया, "अब इस तरफ देखा न। मैं पहले ही जानता था। चुपके चुपके मेरी परेशानी का तमाशा देख रही हैं। इस बचपन की भला कोई हद भी है। क्या बेवकूफ औरत है। अच्छी बात है, मैंने भी बेगम साहबा का पानदान ही न ग़ायब किया हो तो कहना।"

बेताबी की हालत में कभी सहन से गुजर कर बाहर जाते, कभी अन्दर आ जाते। कनखियों से चची को ताड़ते जा रहे थे। कभी बाहर खड़े होकर दाढ़ी खुजाने लगते, कभी अन्दर आकर पेट सहलाना शुरू कर देते। समझ में न आता था कि क्या करें, "क्या बेहूदा मज़ाक़ है। और अगर मैं इनकी ओढ़नी को दियासलाई दिखा दूँ, जब ?" अन्दर खड़े चोर निगाहों से बार बार बावर्चीख़ाने की ओर देख रहे थे कि संयोग से बन्नो हंडकुल्हिया का सामान लिये उधर से

गुज़री। चचा ने उसे इशारे से बुलाया। धीरे से कहा—बन्नो ! एक काम करना। हमारी ऐनक खो गई है। बावर्चीख़ाने में कहीं रक्खी थी। ढूँढकर ला देगी ?

बन्नो ने पूछा—कौन सी ऐनक ?

चचा बोले—अहमक़ कहीं की। जो ऐनक हम लगाते हैं, और कौन सी। मगर देख तेरी अम्माँ को न मालूम होने पाये।

बन्नो चचा का मुँह ताकते हुए बोली—अपनी ऐनक लगा तो रक्खी है आपने।

चचा ने चौंक कर हाथ आँखों की तरफ़ बढ़ाया, "हैं ?" यकीन न आया कि जिस चीज़ को हाथ ने छुआ वह ऐनक ही है। उतार ली, हाथ में लेकर घुमा घुमाकर देखने लगे, फिर अचरज के साथ एक नजर बन्नो पर डाली, "यह यहीं थी ? कब लगाई थी हमने ?"

बन्नो को छूटी हँसी। ठट्ठे लगाती और 'अम्माँ' 'अम्माँ' करती हुई यह बात सुनाने बावर्चीख़ाने को चली। चचा ने लपक कर पकड़ लिया, "हैं हैं, क्या हुआ ? कहाँ चली ? गुलाब जामुन खायेगी ? वह बात तो हमने मज़ाक में कही थी। पागल कहीं की। इसमें अम्माँ को सुनाने की क्या बात ? दीवानी हुई है। क्या लायें तेरे लिये बाज़ार से ? थप्पड़ मारूँगा मैं।"

बन्नो ने ठहाका और 'अम्माँ' 'अम्माँ' की रट बन्द न की तो चचा ने गुस्से में उसे धमाका दिया। वह बेचारी गिरकर रोने लगी। चचा जल्दी से बाहर निकल गये।

शाम को चचा घर आये तो लदे फँदे थे। एक हाथ में मिठाई की टोकरी, दूसरे में कचौरियों की। दरवाज़े में क़दम रखते ही बच्चों को पुकारना शुरू कर दिया। ऐसे खुश थे जैसे सुबह कुछ हुआ ही न था। सब को लेकर पलंग पर बैठ गये। मिठाई और कचौरियों में से बन्नो और दद्दू को औरों से ज़्यादा हिस्सा मिला। चची का हिस्सा उनके लिये बावर्चीख़ाने में भेज दिया गया।

फ़राग़त पाने के बाद बुन्दू को लेकर ड्योढ़ी में चले गये। उससे कहा—बुन्दू यार, यह लो तुम एक आना। और अगर एक काम करो तो चवन्नी इनाम। ख़ाँ साहब नुक्कड़ की दूकान पर हज्जाम के यहाँ दाढ़ी बनवाने आया करते हैं। बाइसिकिल अपनी बाहर रख जाते हैं। अब की आयें तो चुपके से जाकर उनकी साइकिल में पंक्चर कर दीजियो।

□

## चचा छक्कन ने तीमारदारी की

चचा छक्कन दिल में ख़ूब जानते हैं कि किसी की सेवा शुश्रूषा उनके बस का रोग नहीं है। इसके लिये जिस मुस्तैदी, शान्ति, धैर्य और संतोष की ज़रूरत है वह उन्हें छू तक नहीं गया। इसी वजह से आम तौर पर अपनी तीमारदारी को मिज़ाजपुर्सी से आगे बढ़ने नहीं देते, लेकिन तबियत के हाथों ऐसे लाचार हैं कि ज़रा सी बात में ताव खा जाते हैं, चुनांचे एक दिन आगा पीछा सोचे बिना तीमारदारी के मैदान में जौहर दिखाने पर आमादा हो गये। कुछ ऐसा मालूम होता है कि चची के सलीक़े में उन्हें अपने सुघड़ापे का अपमान दिखाई पड़ता है। फिर अगर किसी बात में चची अपनी मेहनत और उनकी आरामतलबी की तरफ़ भी इशारा कर दें तो चचा आपे से बाहर हो जाते हैं और हारें या जीतें मगर दिले-नातवाँ मुक़ाबला किये बिना नहीं रहता। ख़ैर इन मुक़ाबलों का नतीजा शिक्षाप्रद हो या न हो, चचा ग़ैरतदार हैं तो आगे किसी की तीमारदारी का बीड़ा तो उठायेंगे नहीं।

बात यों हुई कि पिछले दिनों लल्लू बेचारे को निकला मोतीझरा। शुबरात से अगले दिन जो हलहलाकर बुख़ार चढ़ा है तो इक्कीस दिन हो गये टस से मस न हुआ। घर में काम करने वाली ले देके एक चची। वे बेचारी क्या क्या करें? घर उठायें, हँडिया चूल्हा देखें, बच्चे सम्भालें या हर वक्त बीमार की पट्टी से लगी बैठी रहें? इधर बीमार के पास आकर बैठीं उधर मामा की आवाज़ आगई—"बीबी दाल दे जातीं तो मैं बीन लेती, नहीं तो कटकल रह जायगी।" रसोई-घर में पहुँचीं

तो लल्लू ने ठुनकना शुरू कर दिया कि मैं तो अम्माँ के हाथ से ही पानी पियूँगा । किसको टालें, किसकी ख़बर लें । दिन इसी क़वायद परेड में बीतता । रात आँखों में कटती । फिर एक दिन न दो दिन । मियादी बुख़ार । तीन हफ्ते की मेहनत ने अधमुआ कर दिया । इकीसवें दिन से आस लगाये बैठी थीं कि बुख़ार टूट जायगा । लेकिन इक्कीसवाँ दिन भी आया और साफ़ गुज़र गया । एक और हफ्ता पहाड़ की तरह सिर पर आ खड़ा हुआ ।

तीसरे पहर बैठी तौलिये से लल्लू के झावाँ कर रही थीं कि कहीं चचा ने इमामी के हाथ पान की डिबिया अन्दर भेज दी । साथ ही कहला भेजा—"ख़ूब अच्छी तरह भर दें ।" चची चिन्तित तो बैठी ही थीं, इधर हाथ भी रुका हुआ था, बिगड़ कर बोलीं—"लेजा उठा के पानदान । भरते रहेंगे आप ही ।"

पानदान के जवाब में चचा ख़ुद आ मौजूद हुए । बोले—वह पान-दान भेज दिया तुमने ?

चची ग़ुस्सा कड़ुए घूंट की तरह पी गईं । सिर्फ़ इतना कहा—और क्या बीमार की चारपाई उठवाकर भेजती ।

चचा को इस जवाब की व्याख्या समझने का साहस न हुआ । चची के तेवर बेढब थे । लल्लू को सम्बोधित कर बोले—क्यों बे यार लल्लू ! बड़े ठाठ से झावाँ करा रहे हो उस्ताद ? अब यह कहो तुम उठते कब हो ?

चची से न रहा गया । बोलीं—जल्दी उठ बैठ बेटे । अब्बा फ़िक्र के मारे दुबले हुए जा रहे हैं ।

अब इतने खुले वार पर चुप रहना भला चचा के लिये कब मुम-किन था । बोले—यानी तुम समझती हो तुम्हारे सिवा किसी को बच्चे की फ़िक्र ही नहीं है ?

चची रूखी हँसी हँस पड़ीं, बोलीं—यह तो वही मसल हुई कि चोर की दाढ़ी में तिनका ।

चचा के लिये बात खोलकर करने के सिवा चारा न रहा। बोले—बड़ा तीर मारा कि दो रोज़ तीमारदारी करली। समझ बैठीं कि बस हम ही सब कुछ हैं। जनाब ने तो एक बच्चे की तीमारदारी की है। मैं बीसियों जवानों की तीमारदारी कर चुका हूँ। और अब भी मैंने अगर ज़्यादा दख़ल नहीं दिया और दिल मार कर चुपका बैठा रहा तो किसके ख़याल से ? तुम्हारे। कि भाई माँ है। बच्चे की ममता है। जो जी चाहे कर लेने दो। नहीं तो मुझे ख़ुद कब पसन्द था कि बीमार बच्चे को तुम्हारे हाथ में छोड़ दूँ ?

चची मुँह फेरते हुए बोलीं—कभी इतनी तौफ़ीक़ तो हुई नहीं कि घड़ी दो घड़ी आकर बीमार के पास बैठ जायें। आ जाते हैं सुबह शाम नाक पर दिया जलाकर कि उतर गया होगा बुख़ार। क्या बात है, अब तक उतरा क्यों नहीं ? तेज़ है ? ओ हो ?...यह तीमारदारी करेंगे।

चचा छक्कन गाली सुन सकते हैं। लेकिन ऐसा ताना जिसमें उनकी क़ाबलियत के किसी पहलू की तरफ़ इशारा हो और फिर चची जान की ज़बान से, उनकी बरदाश्त से बाहर है। उन्हें शायद दिल ही दिल में कुछ ऐसा महसूस होता है कि इस इशारे में मानो यह बात छिपी है कि चची ने उनकी बीवी बनकर उन पर बड़ा एहसान किया है। और बीवी का एहसान लेना उनकी मर्दानगी किसी हालत में भी बरदाश्त नहीं कर सकती। बिना सोचे समझे बोले—आप बावर्चीख़ाने में तशरीफ़ ले जाइये, चूल्हा फूँकिये। मैं आप कर लूँगा तीमारदारी।

चची ऐसे दावों की असलियत ख़ूब जानती हैं। नाक चढ़ाकर बोलीं—क्या करूँ, पत्थर तले हाथ दबा है। डाक्टर ने कह रक्खा है, एक से ज्यादा तीमारदार बच्चे के पास न रहे, घर में शोर ग़ुल न हो, नहीं तो मुझे इनकार न था। कह देती, यह अरमान भी शौक़ से निकाल देखो।

न जाने चचा ऐसे मौक़ों पर जान बूझकर अनजान बन जाते हैं

या इसी तरह के पिछले दावों के नतीजे उन्हें याद नहीं रहते। बोले—तुम एक तीमारदार, और मैं एक से ज्यादा हो गया, वह क्यों ? और यह शोर गुल कैसा ? तुम तो जैसे चुपशाह का रोज़ा रक्खे बैठी रहती हो ?

चची जलकर बोलीं — चुपशाह का रोज़ा नहीं रखती तो बार बार इमामी, मोदे और बुन्दू को पुकार कर घर भी सिर पर नहीं उठाती।

चचा बिगड़कर बोले — बहुत अच्छा, जाइये। मोदे, इमामी और बुन्दू को भी बावर्चीख़ाने में घुटनों से लगाकर बिठा रखिये। मैं उनके बग़ैर भी दिखा दूँगा जनाब को कि कैसे करते हैं तीमारदारी।

चचा को कमज़ोर प्रतिद्वन्द्वी समझकर चची आम तौर से ऐसी बात गोल कर जाया करती हैं। लेकिन उस वक्त उन्हें भी न जाने क्या हुआ। जैसी बैठी थीं, वैसे उठ खड़ी हुईं और झवे का तौलिया चचा के हाथ में पकड़ा सीधी रसोई घर को चल दीं।

उनके यों अचानक उठ खड़े होने की आशा चचा को भी न थी। हैरान से रह गये। एक मिनट तो चुपचाप तौलिये को देखते रहे, आख़िर ज़िम्मेदारियों और मजबूरियों को महसूस करके खिसियानी हँसी हँस पड़े। लल्लू से कहने लगे—देखता है इनकी बातें ? समझती हैं बस इन्हें ही आती है तीमारदारी। और सब तो अपाहिज हैं।

अम्माँ के चले जाने से लल्लू कुछ उदास हो गया था। करवट लेकर पड़ रहा। शायद चचा ने मानो अपना फ़र्ज़ अदा करने को लल्लू से पूछा—भई झाँवाँ करते रहें ?

लल्लू ने मूँह से कुछ न कहा—सिर हिलाकर हाँ कर दी। अब चचा के लिये इसके सिवा चारा ही न रहा कि झाँवाँ करें और बिना किसी की मदद के करें। बोले—हम आप करेंगे अपने बेटे के झाँवाँ।

फिर कुछ रुक कर आप पाँयती बैठ गये और बोले—लो भई हम

तो करते हैं झाँवाँ और तुम करो हमसे बातें।

झाँवें के लिये तौलिया बिछाकर सब पहलुओं से ऐसे तकल्लुफ से तह किया गया मानो चचा झाँवें के लिये गद्दी नहीं बना रहे हैं, बीमार के मनबहलाव के लिये तौलिये की नाव बना रहे हैं। इस बीच में वे लल्लू से बराबर बातें करते रहे—यह चुप साधने की शर्त नहीं है। यों तुम्हारा दिल घबरा जायगा। बातें करनी होंगी हमसे। हाँ! अच्छा यह बताओ, अच्छे होकर तुम खाओगे क्या क्या?

इक्कीस दिन का बीमार। भला बातें क्या करे? करवट लिये चुपका पड़ा रहा। तौलिया तह कर चुकने के बाद चचा के चेहरे पर गर्व और सन्तोष की एक मुस्कराहट खेलने लगी—अब बनी गद्दी झाँवें की। इसे कहते हैं गद्दी। कभी देखी भी न होगी बेगम साहबा ने।

चचा ने झाँवाँ ऐसे ज़ोर से शुरू किया मानो झाँवाँ नहीं कर रहे पाँव पर पालिश कर रहे हैं। बातें लाचार हो बन्द कर दी थीं क्योंकि हाथ जोर से हिलने के कारण बातें गीत की तानें सी बनकर गले से निकलती थीं बार-बार गर्दन बढ़ाकर सहन की तरफ़ देख रहे थे कि शायद किसी से निगाहें चार हो जायँ और वह उनकी इस कीर्ति की ख़बर चची तक पहुँचा दे। साँस फूली हुई थी, बात न होती थी पर केवल चची के सुनाने को ऊँची आवाज़ में कहे जा रहे थे—अब मज़ा आया होगा झाँवें का......बड़ी मेहनत का काम है......एक तरह का फ़न समझना चाहिये।

लेकिन पाँच ही मिनट बाद स्थिति बदल गई। पहुँचे और कोह-नियाँ दुखने लगीं। बाजू ढीले पड़ गये, हाथ थक गये, दिल उकता गया, उठने की चिन्ता होने लगी। पर अब उठें कैसे? स्वयं उठते हुए शर्म आती थी। लड़का बस करने को कहता नहीं था, न आशा थी कि कहेगा। वह आँख बन्द किये ऐसा चुप पड़ा था जैसे उसे ख़बर ही नहीं थी कि चचा पर क्या बीत रही है। आख़िर कुछ देर बाद चचा ने हाथ रोका और उससे पूछना शुरू किया—क्यों भई, प्यास तो नहीं लगी?

पानी लाऊँ? अनार के दाने निकाल दूँ?......अरे हाँ लल्लू, वह जो तूने पौदा लगाया था क्यारी में, उसमें फूल आ गये। लाकर दिखाऊँ? पर लल्लू ने किसी ऐसी चीज़ की फ़रमायश न की जिसे लाने के लिये चचा को उठने का मौक़ा मिल सकता। उसी तरह गुम सुम चुपका पड़ा रहा।

दो एक बार चचा ने ऐसे ढंग से उठने की कोशिश की मानो उनकी राय में लल्लू सो गया है। पर उनके हिलते ही लल्लू कराहने लगा या आँखें खोल दीं इसलिये चचा को लाचार हो फिर बैठ जाना पड़ा। पाँव सो गये थे, हाथ काँपने लगे थे। कभी बैठने का अन्दाज़ बदलते कभी झाँवाँ रोक कर एक हाथ से दूसरे हाथ का बाजू दबाने लगते। झाँवाँ नाम को हो रहा था। रोगी बेचैन था। चचा घबराई हुई निगाहों से इधर उधर ताक रहे थे कि किसी तरह उठने का कोई बहाना मिले। पर किसी तरह मुश्किल आसान न होती थी। आख़िर जी कड़ा करके बोले—"बस भई अब ज्यादा झाँवाँ नहीं करते। कम-ज़ोरी आ जाती है।" यह न पता चला कि रोगी को या झाँवाँ करने वाले को।

यह कहकर चचा तुरन्त उठ खड़े हुए और आरामकुर्सी पर लेट गये। तीमारदारी का जोश कुछ ठंडा पड़ गया था। बड़ी देर तक मुँह बना बनाकर अपने हाथ दबाते और उँगलियाँ चटकाते रहे। टांगें फैला फैला कर थकान उतारी। हवास ठिकाने हुए तो लल्लू की ओर ध्यान दिया—सो गये लल्लू? लल्लू भैया! ए लल्लू! ओ ललुए! नींद आगई क्या? अच्छा सो रहो।

बाहर चची ने आवाज़ सुन ली। छुट्टन के हाथ कहला भेजा—सोने न देना। दवा का वक्त है। सिरहाने छोटी मेज़ पर दवा की शीशी रक्खी है। एक ख़ुराक दे दो।

चचा दवा देने को उठ खड़े हुए। शीशी हाथ में लेकर लेबुल पढ़ा इधर उधर देखा, दाढ़ी खुजलाई, पेट सहलाया। बेताब थे कि किसी को

मदद के लिये पुकारें। लेकिन आज के दिन किसी की मदद लेने में वे अपना अपमान समझते थे। लाचार हो ख़ुद ही दवा देने पर तैयार हुए। शीशी रखकर दवा निकालने के लिये प्याली लाये। काग निकाला। पहले तो शीशी को दाँतों में पकड़कर काग को प्याले में उँडेलने की कोशिश की। इसके बाद लाहौल कहकर काग मेज़ पर रख दिया और शीशी से दवा उंडेलनी शुरू की, बूँद बूँद भर निकालते और आँखें चुँधिया चुँधिया कर ख़ुराक का निशान देख लेते। ज़रा सी दवा निकालनी बाक़ी थी कि शीशी झुक गई और दवा डेढ़ ख़ुराक निकल आई।

चचा ने पहले तो प्याली टेढ़ी की कि अधिक ख़ुराक गिरादें। फिर ख़याल आया कि कहीं जरूरत से ज़्यादा दवा गिरकर ख़ुराक की मात्रा कम न हो जाय, इसलिये चचा ने इरादा किया कि ख़ुराक से अधिक दवा शीशी में डालकर सन्तोष करलें।

प्याली से दवा शीशी में उँडेली। आप जानिये, प्याली के चोंच तो होती नहीं कि दवा सीधी शीशी में चली जाती, शीशी के बाहर बहकर नीचे गिर पड़ी। चचा ने ज़रा देर हाथ रोककर सोचा—अब क्या करें! इसके सिवा दूसरा उपाय न सूझा कि प्याली में जो दवा बाक़ी रह गई थी वह भी शीशी में ही उँडेल दें और नये सिरे से एक पूरी ख़ुराक निकालें। आख़िर दवा शीशी में एकदम उँडेली तो ज़रा सी रह गई। बाक़ी सब हाथ पर से होती हुई फ़र्श पर गिर पड़ी।

छुट्टन के हाथ चची ने अनार के दाने निकाल कर भेजे थे। वह बेचारा खड़ा दवा निकालने का यह तमाशा देख रहा था। उसे हँसी आगई। ऐसे मौक़े पर कोई हँस पड़े तो चचा के आग ही लग जाती है। सिर फेर कर लाल पीली आँखों से उसे घूरा, "बदमाश कहीं का। हँसा काहे पर? और यह क्या मौक़ा था हँसी का? पीट पीट कर उत्तू कर दूँगा।" ग़रज़ बेचारे को मार मार कर नहीं तो डाँट डाँट कर उत्तू बना ही दिया।

हाथ पोंछ पाँछ चचा ने शीशी को जो देखा तो दवा आधे निशान

तक थी, आधी इस अदला बदली में नष्ट हो चुकी थी। अब क्या करें। आधी ख़ुराक तक दवा निकालना आसान न था। बड़े सोच विचार के बाद चचा ने तय किया कि बाक़ी आधी ख़ुराक भी नष्ट कर दी जाय और इससे अगली पूरी ख़ुराक निकाली जाय। चूँकि बाक़ी ख़ुराक रोगी को नहीं देनी थी बल्कि नष्ट करनी थी इसलिये उसे सावधानी से निकालने की ज़रूरत चचा को न सूझी। दरवाज़े में जा शीशी ज़रा बेफ़िकरी से दरवाज़े में उलटा दी।

अब जो शीशी आँखों के सामने लाकर देखते हैं तो दवा फिर आधे ही निशान तक है। मगर अगली से अगली ख़ुराक के। चचा झुँझला उठे। अनायास कुछ उलटे सीधे शब्द उनके मुँह से निकल गये। लेकिन बेचारे करते ही क्या, इमामी बुन्दू का क़सूर तो था नहीं कि शोर मचा कर दिल की भड़ास निकाल लेते। अगली आधी ख़ुराक दवा गिराने के काम में लग गये। सारांश यह कि कोई आध घन्टा और पाँच ख़ुराकें नष्ट करने के बाद चचा अपनी इच्छानुसार दवा निकालने में सफल हुए।

लल्लू की आँख लग गई थी। उसे जगाया, वह ठुनकता हुआ जागा। बच्चे के ठुनकने और रोने से चचा की तीमारदारी पर आँच आती थी। दबे स्वर में उसे चुमकारा और उससे तरह तरह के झूठे वायदे किये—एक तो जनाबमन, हमने तुम्हारे लिये डोर की पूरी रील मँगाई है, और दूसरे जनाब, गुलशन से कहा है कि एक दर्जन रंग बिरंगी पतंगें बना कर लाये। बस, इधर तुम अच्छे हुए और उधर पेंच लड़ाने का सामान हुआ।

चचा चारपाई पर चढ़े। सहारा लेकर लल्लू को उठाया। दवा देने लगे तो ख़याल आया कि कुल्ली के लिये पानी तो लाये ही नहीं। उसे फिर लिटाकर भागे भागे पानी लेने चले गये। पानी की प्याली मेज़ पर रखकर फिर चारपाई पर चढ़े। लल्लू को उठाया और समझा बुझा कर बड़ी मुश्किलों से दवा पीने पर तैयार किया। अब जनाब ने क्या

तमाशा किया कि पानी की प्याली तो उसके मुँह से लगा दी और कुल्ली के लिये दवा की प्याली हाथ में थामे बैठ रहे। जब उसने खुद ही ठुनक कर बताया कि यह तो पानी है तो आपको अपनी भूल मालूम हुई। शर्माते तो क्या, "ओहो !" कहकर प्यालियाँ बदल लीं और दवा की प्याली लल्लू को दी।

ख़ाली प्याली उसके हाथ से लेकर कुल्ली के लिये पानी दिया तो अब उगालदान लेने को लपके। बच्चे का सिर धड़ से तकिये पर आ गया। उधर दवा से उसका मुँह कड़ुआ था ही, इधर जो सिर में धचका लगा तो वह ज़ोर-ज़ोर से रोने लगा। आप कभी उसके सामने गिलास करते, कभी उगालदान, कभी अनार के दाने। लेकिन रोगी की हठ। वह किसी चीज़ की ओर आँख उठाकर नहीं देखता। 'अम्माँ, अम्माँ" कह कर रोये जा रहा है। चचा घबरा घबराकर कभी लल्लू को देखते हैं कभी दरवाज़े को कि कहीं चची न आ रही हों। बच्चे को कभी लिपटाते हैं, कभी मिन्नत खुशामद करते हैं, पर उस पर ज़रा भी असर नहीं होता। अन्त में चची को सुनाने के लिये ऊँची आवाज़ में कहना शुरू किया—अब हमने तो दवा में कड़ुवाहट मिला नहीं दी। ऐसी ही होती हैं डाक्टरों की दवाएँ। हमारा कोई क़सूर हो तो हम जिम्मेदार। यों अम्माँ के बुलाने को ही जी चाह रहा हो तो तुम जानो।

चची रसोईघर से छुट्टी पाकर चचा के पानों की डिबिया भर रही थीं। वहीं से बोलीं—आई बच्चे, आई।

इतने में चची आईं। लल्लू ने रो रोकर बुरा हाल कर लिया था। हिचकी बँध गई थी। चचा के हाथ पाँव अलग फूल गये थे। अब उनसे तसल्ली भी न दी जाती थी। अलग खड़े घबराई हुई निगाहों से उसे देख रहे थे। मुँह तक बात आती थी पर निकल न सकती थी। दिलासा देने को हाथ उठाना चाहते थे पर न उठता था। चची आईं तो उनके हवास ठिकाने लगे। बोले—आप ही आप रोने लगा। बस दवा दी थी।

चची ने पान मेज़ पर रख दिये और "मेरा चाँद ! मेरा लाल !" कहती हुई लपक कर सिरहाने बैठ गई। बच्चे का सिर अपनी गोद में रख लिया और सहलाने लगीं। बच्चे को ज़रा शान्ति मिली तो चचा ने पान की ओर ध्यान दिया। पाने खाते हुए अपने आप से कहने लगे—रट ही माँ की लग जाय तो तीमारदार ग़रीब क्या करे।

चची ने लल्लू के माथे पर हाथ फेरा तो ठंडा-ठंडा था। हाथ देखे तो वह भी ठंडे। बोलीं—ऐ है। इसे तो कमज़ोरी का दौरा पड़ गया है। पिंडा ठंडा पड़ा जा रहा है। रंगत भी तो पीली पड़ गई है। अरे कोई दूध लाओ दूध। पीछे चूल्हे पर रक्खा है। मलाई हटाकर लाना।

तीमारदारी से अभी चचा का बाक़ायदा छुटकारा तो हुआ न था। प्याली उठाकर ख़ुद दूध लेने चल पड़े। रसोई घर में मामा आटा गूंध रही थी। दूध निकालने को उठने लगी। चचा के मुँह में थी पीक ! "ऊँहूँ, ऊँहूँ" करके उसे रोक दिया। लड़के बढ़ने लगे तो "ऊँहूँ, ऊँहूँ" करके उन्हें भी रोक दिया। खुद देगची उठाकर दूध उंडेलने लगे। दूध जोश पर आकर ठंडा हो रहा था। उस पर आ गई थी मलाई। चची ने कहा था मलाई उतार कर दूध लाना। मलाई हटाने को आप देगची रखकर एक फूंक जो मारते हैं तो पान की सारी पीक देगची में ! दूध की अच्छी ख़ासी चाय बन गई।

अब चचा की हालत देखने के क़ाबिल थी। कभी देगची को देखें कभी खोये खोये इधर उधर देखें। कुछ समझ में न आता था कि क़सूर किसका है ! एक बार देगची नीचे रखदी फिर उठाई। दूध को गौर से देखा। फिर नीचे रखदी। उठ खड़े हुए। रोगी के कमरे की ओर चले। फिर रसोई-घर में देगची के पास आ खड़े हुए और ठोड़ी खुजाने लगे। आख़िर सब कुछ छोड़ छाड़ बाहर अपने कमरे में चले गये और भीतर से चटकनी लगा ली...........एक मिनट बाद बाहर निकले और दूध की देगची उठाकर फिर भीतर घुस गये।

इस घटना से घर में जो बदमज़गी पैदा हुई वह लल्लू के तन्दुरुस्त होने से पहले दूर न हो सकी।

## चचा छक्कन ने झगड़ा चुकाया

पिछली गर्मियों में इतवार का दिन था। हमारे यहाँ चिराग़ में बत्ती पड़ते ही खाना खा लिया जाता है। बच्चे खाना खाकर सो गये थे। चची ने खाना खिलाकर इशा की नमाज़ की नियत बाँधी थी, और नौकर बावर्चीख़ाने में बैठे खाना खा रहे थे। चचा छक्कन बनि-याइन पहने, तहमत बाँधे, टाँग पर टाँग रक्खे चारपाई पर लेटे मज़े से हुक्क़े के कश लगा रहे थे कि एकाएक गली में से शोर-गुल की आवाज़ आई।

बुन्दू, इमामी और मोदा खाना छोड़कर दरवाज़े की तरफ़ लपके। चचा भी चौंक कर उठ बैठे और जब कोई नज़र न आया तो चची की तरफ़ देखा। चची ने सलाम फेरते हुए मुँह उधर मोड़ा, आँखें चार हुईं तो चचा ने पूछा—यह शोर कैसा है ?

चची माथे पर बल डालकर वज़ीफ़ा पढ़ने लगीं।

चचा छक्कन कुछ देर इन्तज़ार करते रहे कि शायद कोई नौकर लड़का पलट कर आये और कुछ ख़बर लाये। वैसे चची से बराबर पूछते रहे—कोई आता नहीं...देखती हो इनकी हरकतें ? मालूम नहीं क्या वारदात हो गई।

लेकिन जब न चची ने कुछ जवाब दिया और न कोई लड़का वापस आया तो मजबूर होकर उठे और जूता पहनकर खुद बाहर निकलने की तैयार की।

चची बोलीं—चले तो हो, किसी के झगड़े में न पड़ना।

चचा बोले—मेरा सर फिरा है ? बाज़ारी लोगों के झगड़ों से हमें क्या सरोकार ?

जनानख़ाने से निकलकर मर्दाने में आये। ड्योढ़ी में क़दम रक्खा तो देखा कि घर के सामने भीड़ जमा है। चचा को उम्मीद न थी कि इतनी जल्दी मौक़े पर जा पहुँचेंगे। कुछ घबराये, आगे बढ़ने के लिये अभी तैयार न थे। लौटने को जी न चाहता था, इसलिये आपने जल्दी से दिया गुलकर ड्योढ़ी का दरवाज़ा भेड़ दिया और देर तक झिरी से आँख लगाये सूरते हाल का मुआयना फ़रमाते रहे।

पता चला कि झगड़ा दो पड़ोसियों के बीच है जो सामने के मकान में रहते हैं। एक ऊपर की मंज़िल में दूसरा नीचे की मंज़िल में। हाथा-पाई तक नौबत पहुँच गई थी, लेकिन अब लोगों ने दोनों को अलग-अलग करके संभाल रक्खा है और मीर बाक़र अली समझा बुझाकर उन्हें क़रीब क़रीब ठंडा कर चुके हैं। चचा से न रहा गया। यह बात उन्हें कैसे पसन्द हो सकती थी कि उनके होते सारे मुहल्ले का कोई आदमी इस तरह के झगड़ों में पञ्च बन बैठे। चुनान्चे आप तहमद कस बनियाइन नीचे खेंच दरवाजा खोल बाहर निकल खड़े हुए और बड़े बुजुर्गाना ढंग से बोले—अरे भई क्या वाक़या हो गया ?

मीर बाक़र अली ने कहा—अजी कुछ नहीं। योंही ज़रा सी बात पर इन खाँ साहब और मौलवी साहब में झगड़ा हो गया था। मैंने समझा दिया है दोनों को।

वह तो समझ गये। मगर चचा भला कहाँ समझते हैं। मौक़े पर जा पहुँचे, बोले—'मगर बात क्या हुई ? यह तो कुछ ऐसा नक्शा नजर आता है जैसे खुदा न करे, फ़ौजदारी तक नौबत पहुँच गई थी।' मीर बाक़र अली ने टालना चाहा। 'अजी अब ख़ाक़ डालिये इस क़िस्से पर। जो होना था हो गया। पड़ोसियों में दिन रात का साथ। कभी-कभी शिकायत पैदा हो ही जाती है।' अब भी चचा को तसल्ली न हुई। बोले—पर ज्यादती आख़िर किसकी तरफ़ से हुई ?

ख़ाँ साहब बोले—पूछिये इन मौलवी साहब से, जो बड़े मुत्तक़ी बने फिरते हैं। लेकिन जब हरकतें रज़ीलों की सी हों तो दाढ़ी से क्या फ़ायदा ?

चचा चौंक कर बोले—ओपफ़ोह, यह क़िस्सा तो टेढ़ा मालूम होता है !

अब मौलवी साहब कैसे चुप रह सकते थे। बोले—साहब, इनको कोई चुप कराये। मैं बड़ी देर से तरह दिये जा रहा हूँ और ये जो मुँह में आये बके चले जाते हैं। इसका नतीजा इनके हक़ में अच्छा न होगा।

ख़ाँ साहब कड़क कर बोले—अबे जा, चार भले आदमी बीच में पड़ गये जो मैं रुक गया। नहीं तो नतीजा तो मैं आज ऐसा बताता कि छटटी का दूध याद आ जाता।

मौलवी साहब ने तनकर फ़रमाया—ताक़त के घमंड में न रहना ख़ाँ साहब, अंगरेज़ का राज नहीं है, जी हाँ, और यहाँ भी कोई ऐसे वैसे नहीं हैं। हम भी ऐसे हथियारों पर उतर आये तो याद रखिये, वरना जी हाँ...।

ख़ाँ साहब बेक़ाबू हो गये। मुक्का तान कर बढ़ा चाहते थे कि लोगों ने बीच-बिचाव करके रोक लिया। मौलवी साहब आस्तीन चढ़ाते-चढ़ाते रह गये। बाक़र अली साहब ने परेशान होकर चचा छक्कन से कहा—दोनों के दोनों अच्छे ख़ासे समझ गये थे। आपने फिर दोनों को भड़का दिया।

चचा बोले—लाहौल विलाकुवत ! आप फ़रमा रहे हैं कि मैंने भड़का दिया। अजी हज़रत, मैं तो सिर्फ़ इतना पूछ रहा था कि क़सूर किसका है ? आप जो बड़े पंच बनकर घर से निकल खड़े हुए तो इतना तो मालूम कर लिया होता की ज़्यादती किसकी है, और असल वाक़या क्या है।

बाक़र अली ने फिर बात टालनी चाही—अजी कहाँ आप बीच

बाज़ार किस्सा सुनियेगा। जाने दीजिये। जो हुआ सो हुआ। मैं तो इन दोनों की शराफ़त की दाद देता हूँ कि जो हमने कहा, इन्होंने मान लिया। बात आई गई हुई। अब आप क्या गड़े मुर्दे उखाड़ने आ गये।

चचा ने देखा, मीर बाक़र अली छाये चले जा रहे हैं। आग ही तो लग गई। लेकिन सँभल कर बोले—साहब मन ! आपको इस मुहल्ले में आये अभी अरसा ही कितना हुआ। और हमारी तो नाल इसी मुहल्ले में गड़ी हुई है। अब आप जाने दीजिये न इस बात को। और बीच बाज़ार की क्या बात है। यह झगड़ा हम तक आज न पहुँचता, कल पहुँच जाता। सो अब भी क्या हर्ज है। सामने ही तो ग़रीब ख़ाना है। अन्दर चलकर बैठें। दो मिनट में क़िस्सा तय हुआ जाता है। मुझे तो यह हरगिज़ पसन्द नहीं कि जिस मुहल्ले में सभी रहते हों वहाँ पड़ोसियों में यों बीच-बाजार जूती-पैज़ार हुआ करे।

यह कहकर चचा ने मजमे की तरफ़ एक नज़र डाली और बोले—क्यों साहब, खुदा लगती कहिये। यह भला कोई शराफ़त है ?

मजमे में से लोगों की ताईद की भनभनाहट सी सुनाई दी। मीर साहब चुप होकर रह गये। चचा बोले—'तो आप दोनों साहब अन्दर तशरीफ़ ले आइये न। और मीर साहब आना चाहें तो वह भी आ सकते हैं।' बाकी लोगों से चचा ने कहा—'आप हज़रत जा सकते हैं। यहाँ कोई भाँड तो नचेंगे नहीं जो आपको दावत दूँ। आपस के झगड़े तय कराना सर खपाने का काम है। आप लोग अपने-अपने घर जाकर आराम कीजिये।'

लीजिये साहब, चचा काज़ी बन गये। मुद्दई और मुद्दालैह और मीर साहब को साथ लिये घर में आये। घर पहुँचकर पहले मर्दाने ही से फ़रमानों की एक फ़ेहरिस्त तैयार हुई। बुन्दू लैम्प लाये, मोदा बर्फ का पानी तैयार करे और इमामी हुक्का ताज़ा करके पहुँचाये। बुन्दू लैम्प ला चुकने के बाद पान लाये, मोदा पानी बना चुकने के बाद उगालदान लाकर रक्खे और इमामी हुक्के से फराज़त पाकर पंखा खींचे।

सबको दीवानख़ाने में बिठाया। खुद यह कहकर अन्दर गये कि मैं अभी हाज़िर हुआ। अन्दर जाकर बनियाइन पर चिकन का कुरता पहना, पहन ही रहे थे कि चची ने जल्दी जल्दी नमाज़ ख़तम कर सलाम फेर के पूछा—क्या बात है?

चचा बेपरवाही के अन्दाज़ में बोले—अजब हालत है लोगों की। न दिन को चैन लेने देते हैं न रात को। इन सामने वाले ख़ाँ साहब और मौलवी साहब का झगड़ा हो गया। मुसीबत में मेरी जान पड़ गई। सब कह रहे हैं कि आप बीच में पड़ के फैसला करा दीजिये। बात टाली भी नहीं जा सकती। मुहल्ले का मामला ठहरा। ख़ैर, तुम नमाज़ से छुट्टी पाकर पान के कुछ टुकड़े लगाकर भेज देना।

चची जल कर बोलीं—यह शौक़ भी पूरा कर लीजिये।

चचा कुर्ते के बटन लगाते हुए बाहर निकले। दीवानख़ाने में पहुँचकर आराम कुर्सी पर लेट गये। टाँग समेटकर ऊपर धर लीं। बोले— मैं हाज़िर हूँ। फ़रमाइये, क्या बात हुई? सारा वाक़या बयान कीजिये, लेकिन थोड़े में।

मौलवी साहब और ख़ाँ साहब दोनों की त्योरी चढ़ी हुई थी। मुँह फुलाये, लाल लाल आँखों से एक इस तरफ़ एक उस तरफ़ ताक रहा था। चचा का तक़ाज़ा सुनकर दोनों के दोनों कुछ कसमसाये, मगर चुपके बैठे रहे। मीर साहब ने ख़ामोशी तोड़ी। बोले—हज़रत, बात तो असल में बड़ी मामूली थी।

चचा ने कहा—आप तमहीद (भूमिका) को जाने दीजिये। मतलब की बात कहिये।

मीर साहब ने गुस्से को पीकर कहा—तो और क्या कहूँ। बात हक़ीक़त में निहायत मामूली है, लेकिन......

ख़ाँ साहब से न रहा गया—कोई आपकी बहू बेटियों को यों देखता और आप उसे मामूली बात कहते तो जानता।

चचा कुर्सी पर उकड़ूँ बैठ गये और बोले—औरतों का वाक़या

है, तो सचमुच हज़रत इसे मामूली बात कहना तो बड़ी ज़्यादती है आपकी। ख़ाँ साहब, आप खुद ही जो वाक़या है वह बयान कीजिये न।

वाक़र अली साहब चुप हो गये। ख़ाँ साहब का हौसला बढ़ा। वह बोले—आप सा मुंसिफ़ मिज़ाज बुजुर्ग पूछेगा तो बयान करूँगा ही। आपसे क्या परदा है।

चचा फूल गये। कुछ कहना ज़रूरी मालूम हुआ, "नहीं, नहीं, कोई बात नहीं, आप बेतकल्लुफ़ कहिये।"

ख़ाँ साहब ने कहा—आपको पता ही है कि इस सामने के मकान की नीचे की मंज़िल में हम रहते हैं और ऊपर की मंज़िल में एक खिड़की है जिससे हमारे मकान के सहन में नजर पड़ती है।

चचा ने बात काटकर कहा—जी हाँ, जी हाँ, मेरी देखी हुई क्या मेरे सामने बनी है। और एक इस खिड़की का क्या ज़िक्र, इस सारे मकान के बनने में मेरा बहुत कुछ हाथ रहा है। मालिक मकान फ़ज़लु-र्रहमान ख़ाँ का मुझसे बड़ा दोस्ताना था। हैदराबाद जाने से पहले हर रोज़ शाम को मिलने आते थे और सच पूछिये तो उन्हें यह सलाह भी मैंने ही दी थी कि ख़ाली ज़मीन पड़ी है और कौड़ियों के मोल बिक रही है तो कुछ ऐसी सूरत करनी चाहिये कि किराये की एक सबील निकल आये, तो गोया उन्होंने यह मकान बनाया। खैर, इसको तो छोड़िये, आप अपनी बात कहिये।

ख़ाँ साहब ने सोचा कि बात कहाँ तक की थी, और बोले—जी, तो ऊपर की मंज़िल में एक खिड़की है। उससे हमारे यहाँ के सहन में नज़र पड़ती है। हम इस मकान में पहले से रहते हैं। यह हज़रत बाद में आये। आते ही हमने इनसे कह दिया कि मौलवी साहब, इस खिड़की में अगर आप ताला डलवादें तो अच्छा हो। नहीं तो औरतों का सामना हुआ करेगा और मुफ्त में कोई न कोई क़िस्सा खड़ा हो जायगा।

चचा ने दाद दी—बहुत मुनासिब कार्रवाई की आपने। क़ानूनी

नुक्त ए नज़र से गोया आपने ऐसी पेशबन्दी करली कि बाद में अगर किसी क़िस्म की भी शिकायत पैदा हो तो आपको गिरफ्त का जायज़ मौक़ा मिले। बहुत ठीक, जी तो फिर ?

ख़ाँ साहब अपनी तारीफ़ से बहुत ख़ुश हुए—ख़ुदा हुज़ूर का भला करे ! मैंने सोचा नये आदमी हैं, क्यों न पहले ही से ख़बरदार कर दूँ। सो साहब, इन्होंने भी मुझे यक़ीन दिलाया कि खिड़की में ताला डाल दिया गया है और मैं बे फ़िक्र हो गया। अब जनाब, आज सुबह को क्या हुआ कि...

"यह लीजिये, ठंडा पानी पीजिये। आप भी लीजिये मौलवी साहब ! पानी दे बे मीर साहब को...जी तो आज सुबह...अबे रखदे मेज़ पर ख़ासदान, सर पर क्यों सवार होगया है। और वह इमामी कहाँ मर रहा ? अभी तक हुक्क़ा नहीं भरा गया ?...जी साहब, आप कहे जाइये, मैं सुन रहा हूँ....हाँ, और वह उगालदान ? कह भी दिया था, फिर भी याद नहीं रहा ? बड़े नालायक हो तुम लोग !...आप फ़रमाइये न ख़ाँ साहब।"

ख़ाँ साहब ने कुछ देर शान्ति का इन्तज़ार किया। आख़िर बोले—जी, तो आज सुबह इधर मैं दूकान पर रवाना हुआ। उधर ऊपर की मंज़िल में एक बच्चे ने खिड़की खोलदी। औरतें सहन में बैठी थीं। उन्होंने खिड़की बन्द करने को कहा तो ये हज़रत ख़ुद खिड़की में आ मौजूद हुए और अपनी दाढ़ी और मौलवियत का ख़याल भी न करते हुए औरतों को देखने लगे। अब आप ही फ़रमाइये कि यह शरीफ़ों और मौलवियों की सी बातें हैं या लुच्चों और शोहदों की सी हरकतें ?

चचा ने ताज्जुब के साथ आँखें खोलीं, गर्दन झुका ली और फिर एक हाकिमाना ढंग से सर फेरकर मौलवी साहब की तरफ़ देखा। बोले—मौलवी साहब, यह तो आपने ऐसी नामुनासिब और शरअ के

ख़िलाफ़ हरकत की जिसपर आपको जितना भी इलज़ाम दिया जाय, थोड़ा है।

मौलवी साहब देर से बैठे चुपचाप देख रहे थे कि चचा बड़ी हमदर्दी के साथ ख़ाँ साहब की बातें सुन रहे हैं। अब चचा ने उन्हें मुख़ातिब किया तो वह भड़क उठे। बोले—सुबहानल्लाह ! आप भी अजब सादालौह आदमी हैं। जो कुछ किसी ने झूठ सच कहा, झट उस पर ईमान ले आये, वाह साहब वाह !

चचा को मौलवी साहब के बात करने का यह ढङ्ग किसी हद तक बुरा लगा। कहने लगे—तो आपको यह ख़याल है कि मैं ख़ाँ साहब की नाजायज़ हिमायत कर रहा हूँ ?

मौलवी साहब बोले—नाजायज़ हिमायत तो है ही। आप पहले मेरी अर्ज़ भी तो सुनिये कि मैं क्या कहता हूँ।

चचा बेजा हिमायत का इलज़ाम सुनकर चिढ़ गये। बोले—तो बयान कीजिये, आप क्या अर्ज़ करना चाहते हैं। मगर जो कुछ कहिये थोड़े में कहिये। मुझे लम्बी बातें बहुत पसन्द नहीं हैं।

मौलवी साहब बोले—जी, मैं बहुत मुख़तसर तौर पर सब कुछ अर्ज़ किये देता हूँ। हमने तो मकान में आते ही खिड़की में ताला डाल दिया था। इसीलिये आज तक कोई शिकायत की वजह पैदा नहीं हुई। आज इत्तफ़ाक से बच्चे के हाथ चाबी लग गई और उसने खिड़की खोलदी और खिड़की में खड़ा होकर इनके बच्चों को आवाज़ें देने लगा। और मैंने जब...

लेकिन बयान ख़तम होने से पहले ही चचा ने जिरह शुरू कर दी—तो आपका बयान यह है कि महज़ आवाज देने के लिये ही खिड़की का ताला खोला था ? महज़ आवाज़ देने के लिये ?...ख़ूब, इसके लिये भला खिड़की खोलने की क्या ज़रूरत थी ?

मौलवी साहब बोले—आख़िर बच्चा ही तो था। उसे भला नेकबद की क्या तमीज़। उसे यह थोड़ा ही मालूम था कि साहब, यह ताला

न खोलना चाहिये, और वह खिड़की बन्द रहनी चाहिये। चाबी मिल गई थी, ताले पर नज़र पड़ी, खोल डाला।

चचा होंठ सिकोड़-सिकोड़ कर और एक आँख मीच कर यों सर हिलाते रहे जैसे मौलवी साहब के इस जवाब में भी उन्हें ऐसे माने नज़र आ रहे हैं जो दूसरों की समझ से बाहर हैं।

मौलवी साहब ने अपना बयान जारी रखा—मैंने खिड़की जो खुली देखी तो फ़ौरन बन्द करने को लपका और किवाड़ बन्द करके उसी वक्त ताला लगा दिया।

चचा ने फिर टोका—क्यों हज़रत, यह आपके घर में ताला खोलना तो बच्चों को भी आता है मगर बन्द करना आपके सिवा किसी को नहीं आता ? ख़ूब !

मीर बाकर अली साहब बोले—हज़रत यह एक घबराहट की बात थी जिससे यह ज़ाहिर होता है कि इन्हें इस खिड़की के बन्द रखने का हर वक्त ख़याल रहता था। खुली देखी तो एक दम बन्द करने को लपके।

मौलवी साहब ने और भी सफ़ाई के ख़याल से कहा—ख़ुदा गवाह है जो मुझे यह गुमान भी हुआ हो कि सहन में औरतें मौजूद होंगी, या मैंने उस तरफ़ नज़र भी डाली हो। यह सरासर बोहतान है कि मैं खड़ा रहा, बल्कि मैंने तो बाद में नीचे कहलाकर भी भेजा कि मुझे बड़ा आफ़सोस है कि बच्चे ने खिड़की खोल दी थी।

मीर साहब ने मौलवी साहब के चाल चलन के बारे में गवाही दी—मौलवी साहब जब से यहाँ आए हैं, मैं इन्हें जानता हूँ। मेरे बच्चों को पढ़ाते हैं, रोज़ का आना जाना है। और मैं दावे से कहता हूँ कि ये इस क़िस्म के आदमी नहीं हैं। चुनान्चे मैंने खाँ साहब से भी यही कहा था कि औरतों को ग़लतफ़हमी हो गई होगी, नहीं तो मौलवी साहब से किसी बुरे ख़याल की उम्मीद नहीं हो सकती।

लेकिन चचा भला किसी दूसरे की राय को कब ख़ातिर में लाते

हैं। बोले—दिलों का हाल खुदा ही जानता है और इसके बारे में कुछ कहना मेरे लिये कुफ्र है। बहर हाल अभी सब कुछ खुला जाता है। तो जनाब मौलवी साहब, आप रेलवे के दफ्तर में क्लर्क हैं न ? खूब ! और आपको एतवार के रोज़ छुट्टी भी होती है ? बहुत खूब। और जनाब आज एतवार ही का दिन था ? न न, कहिये, था या नहीं ? खुदा आपका भला करे। और जनाब एतवार के दिन आप घर ही में रहते हैं, है न ?......तो सवाल यह है कि अगर खिड़की खुलनी ही थी तो एतवार के दिन ही क्यों खुली जब आप घर में मौजूद थे। किसी और दिन क्यों न खुली ?

यह कहकर चचा ने नथुने फुलाकर इस ढंग से सब पर निगाह डाली मानो कोई बड़ा मैदान जीत लिया है और उनकी दलील का मौलवी साहब के पास कोई जवाब ही नहीं है।

मौलवी साहब इस दलील से परेशान हो गये। बोले—हज़रत ! इस बात की अहमियत कुछ साफ़ तौर पर मेरी समझ में नहीं आई। बाक़ी वाक़या यह है कि खिड़की की चाबी गुच्छे में है, गुच्छा घर पर होगा और उसी वक्त खिड़की खुलने का इमकान भी है।

चचा को इस जवाब की उम्मीद न थी। सिर पीछे को डाल कुर्सी पर लेट गये और बोले—अब यह आप की कठहुज्जती है, वरना हक़ीक़त यह है कि इस बात का जवाब आपके पास कुछ नहीं।

मौलवी साहब ने पता नहीं जानकर या अनजाने में, चचा पर थोड़ा रोग़न चढ़ाया। बोले—साहब, जो असल बात थी वह तो मैंने अर्ज़ कर दिया। अब अपनी क़ाबलियत से जो नुक्ता चाहें निकाल सकते हैं। मुझ जैसे जाहिल की क्या बिसात कि बहस में आप से पेश पा सकूँ।

चचा खुश हो गये। मौलवी साहब के ख़िलाफ़ जो भाव अन्दर ही अन्दर काम कर रहा था, ठंडा पड़ गया। ऐसे अन्दाज़ में हँस पड़े मानो जान बूझकर सिर्फ़ तफ़रीह की ग़रज से यह दलीलों के कमाल

दिखा रहे थे। मुस्कराकर बोले—मालूम होता है आपको भी मंतिक़ (तर्क शास्त्र) से दिलचस्पी है।...ले आया वे हुक्का? रखदे इधर, अच्छा उधर ही रख दे। लीजिये मौलवी साहब, न न, लीजिये न। ज़रा तम्बाकू को मुलाहज़ा फ़रमाइयेगा। बराह रास्त मुरादाबाद से मंगवाता हूँ। वरना, यहाँ की तम्बाकू तो आप जानिये निरा गोबर होती है। मुरादाबाद में अपने एक रिश्तेदार हैं, कलक्टरी में पेशकार हैं। मगर साहब उनके असर रसूख़ का क्या कहना। तो वह कभी-कभार याद कर लेते हैं।

मौलवी साहब ने हुक्के के कश लगाने शुरू किये। ख़ाँ साहब ने देखा कि चचा तो मौलवी साहब की तरफ़ झुके जा रहे हैं तो गुस्से से लाल पीले हो गये, बोले—जिस बात के लिये आपने हमें बुलाया था वह तो......

चचा ने बात काट कर कहा—जी हाँ, देखिये मैं अर्ज़ करता हूँ। तो जनाब मन, बाक़ी रहा उस झगड़े का किस्सा। तो ख़ाँ साहब, मेरी निजी राय पूछिये तो ताली एक हाथ से नहीं बजा करती। दुनिया में आज तक जितने भी झगड़े हुए हमेशा उनका ताल्लुक़ दोनों फ़रीक़ों से रहा है।

ख़ाँ साहब ने फ़ौरन पूछा—इस झगड़े में भला मेरा क्या क़सूर था?

चचा ने जवाब दिया—अरे भाई, कुछ न कुछ होता ही है, तुम्हारा न सही तुम्हारे घर वालों का सही; अब भला उन्हें इस वक्त सहन में बैठने की क्या जरूरत थी, कोई बाग़ तो लगा हुआ नहीं है? आप कहेंगे कि यह आप के घर का सहन था। ज़रा देर के लिये मान लिया कि था, मगर फिर ऊपर खिड़की की तरफ़ देखना क्या ज़रूरी था? वैसे मेरा कोई बुरा मक़सद नहीं, फिर भी देखिये न, कि बात को बढ़ाया जाय, तो कुछ की कुछ हो जाती है। मतलब मेरा यह है कि ऐसे मामलों में जितना छानो उतना ही कर्कट निकलता है।

मीर साहब इस कार्रवाई से तंग आ चुके थे। वह बोले—अजी अब क़सूर एक का था या दोनों का, इस बात से आख़िर क्या फ़ायदा ? आप इस किस्से को किसी तरह निबटाइये कि आइन्दा के लिए इन दोनों साहबों को इतमीनान हो जाय। मैंने जो यह तजवीज़ किया था कि आइन्दा के इतमीनान की ग़रज़ से मौलवी साहब की खिड़की में ख़ाँ साहब अपना ताला डाल दें।

चचा छक्कन ने कनखियों से मीर साहब की तरफ़ देख कर पूछा—क्या मतलब ?

मीर साहब ने कहा—मतलब यह है कि मौलवी साहब के मकान की उस खिड़की में ताला बन्द रहे और उसकी चाबी इतमीनान के लिए ख़ाँ साहब अपने पास रक्खें।

यह तजवीज़ चचा को ठीक मालूम हुई, लेकिन चूंकि यह मीर साहब की तरफ़ से पेश हुई थी, इसलिये मानने को उनका जी न चाहा। वह बोले—नहीं, नहीं, यह तो कुछ......ऊँहूं......कुछ नहीं......इस तरह तो......ख्वाहमख्वाह ख़ाँ साहब अपना एक ताला बेकार कर डालें; और अपने घर में किसी दूसरे का ऐसा दख़ल किसी हयादार को कब गवारा हो सकता है ? यह ताला-वाला फ़रीक़ों के लिये फायदा-मन्द भी हो और इतमीनान का बायस भी। क्यों साहब, अगर खिड़की चुनवा दी जाय, तो कैसा रहे ?

ख़ाँ साहब बोले—अव्वल तो मालिक-मकान अब यहाँ है नहीं, और अगर उसे लिखा भी जाय, तो वह उसे मंज़ूर न करेगा। मैंने एक बार यह तजवीज़ पेश की, तो वह कहने लगे कि इस खिड़की के बन्द होने से कमरे में अँधेरा हो जायेगा।

चचा ने कहा—यह दूसरी बात है, वरना तजवीज़ ख़ूब थी। सदा के लिये यह क़िस्सा खत्म हो जाता। मसलन आप दोनों के चले जाने के बाद कोई दो और किरायेदार आकर बसते, तो उनमें भी किसी क़िस्म

का झगड़ा होने का डर न रहता। आया न ख्याल-शरीफ़ में? मगर यह कमरे में अँधेरा हो जाने का सवाल बेशक टेढ़ा है। ख़ैर, न सही यों, किसी और तरकीब से काम लीजिये, तरकीबें बहुत—बेशुमार हैं। मुझे तो सिर्फ आप लोगों की सहूलियत का ख्याल है, नहीं तो मैं तो तजवीज़ों के ढेर लगाकर परेशान कर दूँ आप को। बड़े-बड़े क़िस्से चुकाये हैं, इस एक खिड़की बेचारी की क्या हक़ीक़त है? तो यों क्यों न कीजिये, कि मसलन आप दोनों में से एक साहब मकान ख़ाली कर दें और किसी दूसरी जगह जा रहें। क्यों साहब क्या राय है?

ख़ाँ साहब और मौलवी साहब कुछ मुँह ही मुँह में बोले, फिर ख़ाँ साहब ने कहा—साहब, मैं तो मकान छोड़ नहीं सकता। कहाँ नया मकान ढूँढ़ता फिरूँ?

मौलवी साहब ने भी मजबूरी ज़ाहिर की—हज़रत, मेरे लिये तो यह फ़िलहाल नामुमकिन है। इतने किराये में इतनी गुंजायश भला और कहाँ मिलेगी?

चचा की अनगिनत तजवीज़ों का खज़ाना इस पहली ही तजवीज़ के बाद ख़तम हो चुका था। बोले—अब यों आप हर तजवीज़ में मीन-मेख निकालने लगें, तो तय हो चुका आपका झगड़ा; यानी मकान बदलने में बुराई ही क्या है? सीधी सी बात है कि भाई, नहीं निभती तो अलग हो जाओ—न रहे बाँस न बजे बाँसुरी। क्या आप के ख़याल में इस मकान के सिवा शहर-भर में और माकूल मकान ही नहीं? या और मकान बाल बच्चेदार लोगों के रहने के लिये नहीं बनवाये गये। इनकार की कोई वजह भी तो होनी चाहिये। इस से तो जाहिर होता है कि आप लोग सुलह सफ़ाई नहीं चाहते, और चाहते हैं कि रोज़ इसी तरह के झगड़े उठा करें। ऐसी हालत में मेरे लिये और कोई तजवीज़ पेश करना मुशकिल है। आप खुद आपस में निपट लीजिये।

मीर साहब बेचारे परेशानी के आलम में ये बातें सुन रहे थे और कुर्सी पर बार-बार पहलू बदलते थे। आख़िर उनसे न रहा गया, हिम्मत

करके वे बोले—मैंने तो अर्ज़ किया न, कि दोनों के लिये सब से अच्छी तरकीब वही है, कि खिड़की में ताला लगा रहे और इसकी चाबी......

चचा जल कर बोले—अजी, आप क्या एक वाहियात-सी बात के पीछे पड़ गये हैं और बार-बार कहे जा रहे हैं—'चाबी-ताला।' यानी आपने तो ऐसा कुछ समझ रक्खा है, जैसे एक ताले की दूसरी कुंजी बनवाई नहीं जा सकती।

मीर साहब ने जल कर जवाब दिया—फिर यों तो दीवार की ईंटें भी निकाल कर झाँका जा सकता है।

बात चचा की समझ में न आई। वे बोले—तभी तो कहा था, कि एक साहब मकान बदल दें। न मानें तो इसका क्या इलाज? अच्छी बात है, वह इनकी औरतों को देखा करें, यह उनकी औरतों को ताका करें।

ख़ाँ साहब ताव खा गये। बिगड़कर बोले—देखिये साहब मुँह संभाल कर बात कीजिये! औरतों का नाम योंही नहीं लिया जाता। यह इज्ज़त का मामला है। हम ग़रीब सही, मगर नकटे नहीं हैं।

चचा कुछ कसमसाये, मीर साहब घबराये, मौलवी साहब उठ खड़े हुये और बोले—तो साहब, अब मैं इजाज़त चाहता हूँ। घर पर बाल बच्चे परेशान हो रहे होंगे। जब, कोई बात तय हो चुके, तो मुझे कहलवा दीजियेगा।

ख़ाँ साहब ने उठकर उनका हाथ पकड़ लिया। वे बोले—तुम्हारे बाल-बच्चे हैं हमारे बाल-बच्चे नहीं हैं? पहले फ़ैसला हो जाय, फिर जाने दूँगा।

मौलवी साहब ने हाथ छुड़ाना चाहा, मगर ख़ाँ साहब की गिरफ़्त मज़बूत थी। वे बोले—तो अपना ताला लाओ और खिड़की में डाल दो।

ख़ाँ साहब बोले—ताला तुम दो, चाबी मेरे पास रहेगी।

चचा को यह तजवीज़ शुरू ही से नापसन्द थी। वे बोले—ताला यह क्यों दें, बेपर्दगी तुम्हारी औरतों की होती है, या इनकी।

चचा की ताईद से मौलवी साहब को भी हौसला हुआ। वे बोले—देखिये तो सही !

ख़ाँ साहब के आग लग गई। बढ़कर मौलवी की गर्दन पर हाथ डाला। मौलवी साहब के गले से एक तरह की आवाज़ निकली, जैसे ज़िबह होते हुए बकरे की निकलती है। मीर साहब हैं, हैं करते लपक कर मौलवी साहब को बचाने के लिए उठे। चचा बोले—"यह हाथापाई ठीक नहीं ?" ख़ाँ साहब ने ढकेला, तो लड़खड़ाते हुए दीवार से जा लगे। चचा ने हाथ पकड़ना चाहा तो एक ज़ोरदार थप्पड़ उन्हें भी रसीद किया। मीर साहब तो चुपके खड़े रह गये, चचा दो क़दम पीछे हट कर बोले "हाय यू...!" लेकिन ख़ाँ साहब किसकी सुनते हैं ? मौलवी साहब की गरदन पकड़ कर बाहर ढकेलते हुए निकल गये ! मीर साहब आवाज़ें सुनते ही फिर बाहर को निकले। चचा चुपचाप जहाँ थे, वहीं खड़े-खड़े गाल सहलाते रहे।

खड़े ही थे कि परदा उठा और चची अन्दर आ गईं। गुस्से के मारे उनका चेहरा तमतमा रहा था। बोलीं—मैं कहती न थी कि पराये किस्से में दखल न देना; मगर मेरी बात इस कान सुनी उस कान उड़ा दी। अब आया होगा झगड़ा चुकाने का मज़ा। कौड़ी का आदमी बे-आबरू कर गया।

चचा इसके लिये तैयार न थे, वे बेक़ाबू हो गये—देखो, इस वक्त मुझसे बात न करो, वरना ख़ुदा जाने मैं क्या कर बैठूँगा।

चची जल कर बोलीं—अब और क्या करोगे ? घर की इज्ज़त ख़ाक में मिला दी। मुहल्ले में किसी को मुँह दिखाने के क़ाबिल नहीं रहे ! अभी कुछ और करने के अरमान बाक़ी हैं।

चचा से जवाब बन न पड़ा। वे बोले—इज्ज़त थी तो हमारी थी,

तुम्हारी नहीं थी...तुम्हारी नहीं। तुम्हें क्या?

चची बोलीं—यह उम्र होने को आई, बच्चों के बाप हो गये और बे इज़्ज़त होते शर्म नहीं आती!

इसके जवाब में चचा ने घर और बच्चों के बारे में कुछ ऐसे नामुनासिब शब्दों का इस्तेमाल किया, जिन्हें यहाँ नहीं लिखा जा सकता।

ग़रज़ यह कि मुहल्ले के झगड़े की आवाज़ घर में आ रही थी, और घर के झगड़े की आवाज़ मुहल्ले में पहुँच रही थी।

●

# चचा छक्कन ने एक बात सुनी

जानता भी था कि चचा छक्कन में लगातार दो मिनट किसी की बात सुनने की ताब नहीं, मीन मेख निकालना उनकी आदत है, बात काटे बिना उनसे रहा नहीं जाता, हर एक शब्द पर टोकते हैं, मगर होनी को कौन रोक सकता हैं। हो गई हिमाक़त। रात को अपने मित्र पंडित दुर्गा प्रसाद को खाने पर बुला रक्खा था। भोजन के बाद अंगीठी बीच में रक्खे, गाव तकिये से टेक लगाये मज़े से चाँदनी पर लेटे से थे। सामने चिलग़ोज़ों के ढेर लगे थे। खा भी रहे थे, बातें भी करते जा रहे थे। सुरूर सा जमा हुआ था। इतमीनान और बेफ़िकरी से बैठे हों और पंडित जी का जी बोलने को चाह रहा हो तो यों समझिये फूल झड़ते हैं मुँह से। जी चाहता है कि महफ़िल जमी रहे और योंही बैठे उनकी बातें सुना करें। जो बात हो ऐसे सलीक़ें और खूबसूरती से कहते हैं और अपने बयान करने के अन्दाज से उसमें ऐसी जान सी डाल देते हैं कि समाँ बँध जाता है।

पंडित जी हमें अपने एक सफ़र का हाल सुना रहे थे कि उन्होंने किस तरह एक स्टेशन पर गाड़ी बदलते समय दरजे में आमों की एक गठरी रक्खी देखी और उसे लावरिस समझकर अपने असबाब में शामिल कर लिया। उसके कुछ आम तो मज़े ले लेकर खाये, और कुछ आमों से पैदल सड़क के मुसाफ़िरों का निशाना बनाया। फिर इस ख़याल से डरकर कि कहीं चोरी खुल न जाय बाक़ी आम और नई दोहर, जिसमें वह लिपटे हुए थे, चलती गाड़ी में से बाहर फेंक दी। यों अपनी

चोरी के सारे निशान मिटाकर बड़े इतमीनान से सफ़र करते रहे। लेकिन जब मंज़िल पर यानी अपने घर पहुँचे तो मज़ा आया। पहुँचने के थोड़ी देर बाद क्या देखते हैं कि घर की महरी किसी चीज़ को खोजती हुई बाहर निकली और बोली—'महराज, मैंने रेल में सवार होते समय अपनी नई दोहर जिसमें सौ क़लमी आम बँधे हुए थे आप के दरजे में रखदी थी, वह असबाब में दिखाई नहीं पड़ती।' पंडित जी ने यह घटना ऐसे मज़े से बयान की और अन्त में ऐसा अजीब मुँह बनाकर अपनी बेवक़ूफ़ी स्वीकार की कि हँसी के मारे सब के पेट में बल पड़-पड़ गये। हमारी हँसी की आवाज़ कहीं चचा छक्कन के कान में भी पहुँच गई। दरवाज़ा खोलकर पूछने लगे, 'अरे भई, क्या बात हुई जो यह ठट्ठे लग रहे हैं ?'

हम सब खड़े हो गये। पंडित जी आदाब बजा लाये, शर्मिन्दा से दिखाई पड़े तो चचा ने उनसे ही पूछा—अरे भई पंडित, यह क्या फुलझड़ियाँ छोड़ रहे हैं। कुछ हमें भी तो बताओ ?

पंडित जी ने शर्माकर जवाब दिया—कुछ नहीं, यों ही इधर उधर की बातें हो रही थीं।

बैठे बिठाये मेरी जो शामत आई तो कहीं कह बैठा—पंडित जी ! यह रेल का क़िस्सा तो चचा मियाँ को भी सुना दीजिये।

चचा छक्कन आम तौर पर तो जल्दी सो रहने के आदी हैं लेकिन इस समय तो जैसे इशारे का इन्तज़ार कर रहे थे। पंडित जी हाँ या नहीं भी न करने पाये थे कि किवाड़ खोलकर यह कहते हुए अन्दर तशरीफ़ ले आये :

'हाँ पंडित जी, हम भी सुनें, वह रेल का क्या क़िस्सा है ?'

यह कहकर चचा अंगीठी के पास पलथी मारकर बैठ गये। रज़ाई को नये सिरे से बनाकर ओढ़ा, कंधों पर डाली, जाँघों के नीचे दबाई। कनटोप पर हाथ फेर कर उसे ठीक से जमाया। थोड़ी देर उसके बंधने से खेले। बाँधना चाहा, न बँधा। फिर ज़रा हाथ सेंके, थोड़ा झुककर

ख़ासदान में पान देखे, फिर बोले—हाँ पंडित जी, तो क्या किस्सा है वह ?

पंडित जी अभी मुँह भी न खोलने पाये थे कि चचा बोले—हुक्का नहीं पीते पंडित जी ?

उन्होंने बड़ी मुश्किल से 'जी नहीं' कहा होगा कि बोले—भला हुक्क़े के बग़ैर बातचीत का क्या मज़ा ?

जनान खाने की ओर मुँह कर के बुन्दू और इमामी को आवाज़ें देनी शुरू कर दीं—अरे यहाँ आओ ? सुनते हो ! यहाँ आओ कोई। अबे नहीं सुना ? कान चोर ले गये क्या ? ओ बुन्दू ! ओ इमामी । कहाँ मर गये कमबख़्तों ! देखा, बस सो गये दोनों के दोनों । इन बदमाशों को ऐसी शाम ही से सोने की आदत पड़ गई है कि फ़िक्र ही नहीं रह गई किसी बात की ! अबे आते हो या मैं आऊँ ? लाहौल विला कूवत । भई बड़े हरामख़ोर हैं ये लौंडे। कुसूर सारा तुम्हारी चची का है। शाम से रोटी दे दिलाकर कमबख्तों को निचन्त कर देती हैं। ख़ैर, जी तो पंडित जी, क्या था वह क़िस्सा ? मगर कुछ मज़ा नहीं बातचीत का हुक्क़े के बिना। अरे भई लल्लू, जरा तुम जाकर हुक्क़ा नहीं भर लाते ? शाबाश, शाबाश, जीते रहो। पर देखना ज़रा ताज़ा कर लेना हुक्क़ा ? समझ गये न ? और सुनना। तवा रख कर लाना । और बात तो सुनो । बड़ा ऐब है तुम लोगों में कि आधी बात सुन कर चल देते हो । ताक़ में से ख़मीरा ले लेना । आज ही आया है लखनऊ से । पन्द्रह रुपए सेर के हिसाब से । कुछ साही तम्बाकू उसमें मिला लेना । बड़ा महँगा हो गया है ख़मीरा साहब । खुद अपने जमाने की बात कहता हूँ कि पाँच रुपए सेर के हिसाब से ख़रीदा है मैंने । एक दूकान थी लखनऊ में हुसैनी की । मगर साहब वाह वाह । क्या बनाता था ख़मीरा । कश लगाते ही रूह खुश हो जाती थी । जब लखनऊ जाता, उसके यहाँ से इकट्ठा ख़रीद कर लाता था । और अब तो वह बात ही नहीं रही तम्बाकू में । कहने को ख़मीरा कहिये या जो जी चाहे, निरा गोबर होता है । ख़ैर, तो हाँ, वह

क़िस्सा क्या था पंडित जी ?

पंडित जी इतना ही कहने पाये थे—"अजी क़िस्सा क्या होता, यों ही एक बात सुना रहा था सफ़र की। अभी कहता हूँ" कि इतने में चचा कि नज़र छुट्टन पर पड़ गई।

"अरे, यह छुट्टन भी है यहाँ ? कैसा दुबक कर बैठा है कि नज़र तक न आया मुझे। अरे सोया नहीं तू अब तक ? सुबह उठेगा कैसे ? मुल्ला जी बाहर खड़े चीख़ा करेंगे और तू पड़ा करवटें लिया करेगा। चल अन्दर ? ऊँ ऊँ ? ऊँ ऊँ क्या मानी ? अब ऊँ ऊँ करो या रूँ रूँ। जाकर सोना होगा। न साहब, आदत बिगड़ती है बच्चे की। चलो जाकर सोओ...जी, तो फिर ? मैंने कहा ख़ासदान में पान का टुकड़ा भी है कोई ? ज़रा तुम जाकर नहीं ले आते दद्दू ? साथ ही मुरादाबादी ज़र्दा रखते लाना। जी, तो पंडित जी, फिर, गरज़ कि सफ़र किया था आपने खूब।'

पंडित जी बोले—पिछली गर्मियों में मुरादाबाद में एक रिश्तेदार की शादी थी। सवारियों को वहाँ पहुँचाने के लिये मेरठ से मैं और मेरा छोटा भाई रवाना हुए। हापड़ जंक्शन पर गाड़ी बदलनी थी। वहाँ जो उतरे...

"कहाँ ?"

"मेरठ से मुरादाबाद जाते हुए हापड़ जंक्शन पर बदलनी पड़ती है न ?"

"यह मेरठ और मुरादाबाद के रास्ते में हापड़ कहाँ से आ गया ?"

"साहब मुझे तो यही रास्ता मालूम है।"

"और जो दूसरा रास्ता हो ?"

"कम से कम नज़दीक का रास्ता तो यही है।"

"ऐ लीजिये, अब दूर नज़दीक पर आ गये। यों ही सही। हमारी आधी उम्र भी रेलों ही का सफ़र करते बीती है। मैं आपको मेल ट्रेनों का रास्ता बताता हूँ। तो फिर दूर नज़दीक का मसला भी हल हो

जायगा। सुनिये, मेरठ से जाइये सहारनपुर, समझ गये ? और जनाब सहारनपुर से लक्सर, लक्सर से नजीबाबाद......।"

"कलकत्ता मेल का रास्ता ?"

"अब बीच में न टोकिये। पूरा रास्ता सुन लीजिये मुझसे। नजीबाबाद से नगीना, नगीना से धामपुर और जनाब धामपुर से मुरादाबाद, आया समझ में ? यही गाड़ी आगे शाहजहाँपुर, लखनऊ, बनारस की तरफ़ निकल जाती है। मगर, इस मौक़े पर उसके तज़किरे से क्या फ़ायदा, हमें तो सिर्फ़ मुरादाबाद के रास्ते से सरोकार है।"

पंडित जी ने कहा—जी हाँ, यह रास्ता तो मेल ट्रेन ही का है मगर दूर का है। मैं बिलकुल नज़दीक के रास्ते से रवाना हुआ था।

चचा ने कहा—यों आपको हर रास्ते से जाने का अख़्तियार था। लेकिन यह ख़याल आपका सही नहीं कि हमारा बताया हुआ रास्ता दूर का है। और यक़ीन न हो तो टाइम टेबुल देखकर अपना इतमीनान कर लीजिये। टाइम टेबुल शायद मौजूद न हो घर में, नहीं तो अभी तय हो जाती बात। पर ख़ैर, मान लीजिये कि वह रास्ता दूर का भी था, तब भी यह ग़लती थी आपकी कि सवारियों को साथ लेकर ऐसे रास्ते से गये जिधर से गाड़ी बदलनी पड़ती थी।

पंडित जी दबी ज़बान से बोले—इस रास्ते भी सहारनपुर में गाड़ी बदलने की ज़रूरत होती।

चचा कनटोप के बंद बाँधने लगे—बदलने की ज़रूरत होती ? यकीन है आपको ? फिर तो कुछ ऐसी ग़लती नहीं की आपने। ख़ैर, वह किसी रास्ते ही गये आप। अब इस पुरानी बात पर बहस से क्या फ़ायदा ! आप बात कहिये न।

पंडित जी ने कहा—तो साहब, असबाब था हमारे साथ ज्यादा।

चचा ने फिर कहा—वह तो होना ही था। आख़िर शादी ब्याह में जा रहे थे और फिर साथ में सवारियाँ। कुछ न पूछिये, ऐसे मौक़ों

पर ये औरतें क्या कुछ सामान साथ लेकर नहीं निकलती हैं। ट्रंक और बकस और गठरियाँ और बिस्तर और जाने क्या क्या। अफ़्फ़ोह, मेरा तो सोचने से भी दम उलझता है।

पंडित जी बोले—जी हाँ, तो हापड़ में इतने में कि हम अपने दरजे से असबाब उतारें, हापड़ उतरने वाले मुसाफ़िर स्टेशन से बाहर चले गये। जब हम सारा असबाब उतार चुके तो क्या देखते हैं कि दरजे में ऊपर के तख्ते पर एक गठरी रक्खी हुई है जो हमारी नहीं थी।

दद्दू पान लेकर आ गया। चचा पान खाने में लग गये। पंडित जी उनका ध्यान दूसरी ओर देखकर रुक गये तो चचा उनकी ओर देखे बिना बोले—"आप कहे जाइये, मैं सुन रहा हूँ।" पान खोल कर कत्था चूना देखा। कत्था ज्यादा था। होंठों ही होंठों में उस पर टीका हुई—"अब तक पान लगाने का ढंग भी नहीं आया। अच्छा ख़ासा पलस्तर है कत्थे का। लाहौल विला क़ूवत......" कत्था पोंछा, पान खाया। छालिया तम्बाकू हथेली पर रखकर फंकी लगाई। पान कल्ले में दबाया और पंडित जी का दिल रखने को मुस्कराकर कहा—आप तो चुप हो गये पंडित जी।

पंडित जी अधीरता से चचा के इस काम से फ़ुरसत पाने का इन्तज़ार कर रहे थे। चचा को अपनी ओर आकृष्ट देख कर बोले—सारी ट्रेन ख़ाली हो चुकी थी इसलिये यक़ीन था कि अब मालिक न आयेगा। दिल में शौक़ पैदा हुआ कि गठरी खोल कर देखें तो कि इसमें क्या है। मैंने उसे उठाकर खोला तो क्या देखता हूँ कि सहारनपुर के बहुत ही बढ़िया मालदा आम क़रीब एक सौ के रक्खे हैं।

चचा मुह ऊँचा करके पीक संभालते हुए बोले—"अरे भई, ज़रा उगालदान बढ़ाना।" पीक थूकी, बाँछें पोंछी और बोले—"ये सहारनपुर के कैसे आम कहे आपने? मालदा आम! और सहारनपुर के? भला सहारनपुर में मालदा आम कहाँ से आया। अमाँ यह तुम पंजाब

की तरफ़ के ज़िलों के लोग आमों की क़िस्मों के सही नाम भी नहीं जानते। मालदा आम होता है बड़ा सा। फीका-फीका, रेशेदार जिसे तुम लोग बम्बई का आम कहते हो। और यह जो सहारनपुर का क़लमी आम होता है यह है असल में बम्बई का आम। दोनों में बड़ा फ़र्क है। ख़ैर, यह तो मैंने योंही कहा। आप अपना क़िस्सा जारी रखिये।"

पंडित जी बेचारों पर अब तक कुछ ओस सी पड़ गई थी। लेकिन तक़ाज़ा सुनकर फिर कहना शुरू किया—अगरचे वह पराया माल था और हमें किसी तरह उसको खाना न चाहिये था मगर उम्र का तक़ाज़ा, तनहाई का मौक़ा और निहायत पक्के आम। हमने सोचा, अब कौन इन्हें रेल वालों को सौंपता फिरे, और रेल वाले ही ऐसे कहाँ के ईमानदार हैं कि मालिक को वापस कर देंगे। आख़िर वह आम भी हमने......

इस पर चचा ने पंडित जी को खुश करने को एक ठहाका लगाया और बोले—ग़रज़ खूब आम मिले खाने को, बहुत दिलचस्प वाक़या है।

पंडित जी बेचारे हैरान कि यह अधबिच में तारीफ़ कैसी ! दो तीन बार कहने की कोशिश भी की कि साहब बाकी बात तो सुन लीजिये मगर चचा ने बुज़ुर्गाना अन्दाज़ में सिर हिला हिलाकर उन्हें बोलने की मुहलत ही न दी। कहने लगे—समझ गया, समझ गया। ख़ूब आम उड़ाये फिर, बहुत ख़ूब। हमारे भी इसी तरह का एक बार एक वाक़या पेश आया। मुरादाबाद से इलाहाबाद जा रहे थे हम, रास्ते में पड़ा वह जंक्शन। वह है न...वह क्या नाम है उसका ? वह...अरे तौबा ...देखो अच्छा सा नाम है...ज़बान पर फिर रहा है...याद नहीं आता...अमाँ वह है नहीं जंक्शन, जहाँ से वह छोटी लाइन किसी तरफ़ को जाती है। तुम्हें तो याद होगा लल्लू, तुम्हीं तो थे हमारे साथ, नहीं कैसे ? वाह ! हम ख़ुद तुम्हें लेकर गये थे साथ, याद नहीं, वह तुम्हारा आधा टिकट लेने पर टिकट बाबू से क़िस्सा हो गया था, और नहीं तो क्या। अरे भई इलाहाबाद जाते हुए ही तो फ़ैज़ाबाद ? अच्छा, फ़ैज़ा-

बाद ! ठीक है, हाँ ठीक है । तुम फ़ैज़ाबाद के सफ़र में साथ थे । ख़ैर, उसका इस मौके पर क्या ज़िक्र । तो वह साहब, न जाने क्या नाम था उस जंक्शन का । ख़ैर, वह कुछ ही था । तो नाम मालूम होना भी ऐसा क्या ज़रूरी है । तो वहाँ से एक लाला जी हमारे दरजे में सवार हुए । वह भी योंही अपनी एक कोरी हंडिया, जिसमें पेड़े थे, दरजे में छोड़ गये थे । वह बाद में हमारे हाथ लगी । तो इस क़िस्म के दिलचस्प वाक़यात अक्सर रेल के सफ़र में पेश आते रहते हैं ।

चचा ने बात ख़तम करके ख़ासदान पर ध्यान किया । महफ़िल पर सन्नाटा छा गया । पंडित जी बेचारे की हालत अजीब थी । वे फ़ैसला न कर पाते थे कि बात ख़तम करें या चुप हो रहें । आख़िर मैंने उनकी परेशानी ख़तम करने के लिये कहा—पंडित जी, बात तो खतम कीजिये ।

चचा चौंक कर बोले—अच्छा, अभी बाक़ी है बात ? लीजिये, हम तो समझे थे ख़तम हो गई । तो भला आपने अधबिच में क्यों छोड़ दी । कहिये न । मैं सुन रहा हूँ ।

पंडित जी ने बेबसी के अन्दाज़ में हम सब को देखा और फिर बात शुरू की—इत्तफ़ाक़ से दूसरी गाड़ी के जिस डिब्बे में हम सवार हुए उसमें और कोई मुसाफ़िर न था । बेफ़िकरी से आम खाने शुरू कर दिये ।

"तराश कर खाये होंगे ?"

पंडित जी ने कहा—जी नहीं, चूसे ही थे । शायद चाकू जेब में मौजूद नहीं था ।

चचा ने ज़्यादा आपत्ति न की । बोले—ख़ैर, ख़ैर, क्या हर्ज है । सफ़र में छोटी मोटी चीज़ें साथ ले जानी कहाँ याद रहती हैं । पर चूसने में मज़ा नहीं रहता क़लमी आम का ।

पंडित जी ने थोड़ी देर फिर इस बात का इन्तज़ार किया कि शायद चचा कुछ और भी कहें । वे चुप रहे तो उन्होंने बात आगे शुरू कर दी—दस बारह आम खाने पर ही पेट भर गया । दो चार और

ज़बर्दस्ती खाये। जब देखा कि बस अब गले से नीचे नहीं उतरते और रसीद की डकार पर डकार आ रही है तो हाथ मुँह धो उठ खड़े हुए, पेट पर हाथ फेरा और भगवान को धन्यवाद दिया...

चचा छक्कन ने फिर बीच में टोका—कि ऐसा मज़ेदार नेमत बे माँगे मिली।

पंडित जी अब चचा के इस तरह बीच में बोलने से ऐसे डर गये थे कि चचा की बात ख़तम हो जाने पर भी उनकी ज़बान न खुलती थी। कुछ तो उलझन की वजह से हवास ग़ायब हो जाते थे, कुछ यह आशंका होती कि बात अभी और बाक़ी न हो। कुछ देर ठहर कर उन्होंने ज़रा तेज़ी से कहानी बयान करनी शुरू कर दी—पेट भरने पर सूझी शरारत। रेल की पटरी के साथ साथ पैदल मुसाफ़िरों की सड़क थी। उस पर मुसाफ़िर आ जा रहे थे। उनपर आमों की दोहरी बाढ़ मारनी शुरू कर दी। जिसके निशाना ठीक बैठता तो सिर पकड़ कर सोचता रह जाता कि यह आस्मानी गोला कहाँ से आया। जो वार ख़ाली जाता उसके कारण मुसाफ़िरों को मुफ़्त का आम खाने को मिल जाता।

"भई वाह वा, ले आये हुक्क़ा? बस रख दो यहीं पर...तो ग़रज़ यह कि पंडित जी, एक खेल हाथ आ गया आपके।...ताज़ा कर लिया था न हुक्क़ा? ...जी, तो पंडित जी, और क्या रह गया?...... तवा न रखकर लाये, हालाँ कि कह भी दिया था मैंने और खुद भी देख रहे थे कि चार आदमी बैठे हैं, महफ़िल जमी हुई है, बातें हो रही हैं। बड़े नालायक़ हो......ख़ैर, आप बात कहिये पंडित जी...... चिलम बुझ गई तो तुम ही को फिर लानी पड़ेगी...जी पंडित जी?"

पंडित जी खिसियाने से हो गये। लेकिन हम लोगों का लिहाज़ था। एक बार फिर हौसला करके बोलने की ठानी—हमारी इन शरारतों को रेल का गार्ड भी ब्रेक में खड़ा देख रहा था। आख़िर उससे न रहा गया। पायदान पर चलता हुआ हमारी गाड़ी में आ पहुँचा। हम

निशाना ताक रहे थे कि एकदम आकर हमें पकड़ लिया।

चचा ने गर्दन उठाकर और आँखें झपका झपकाकर अपने प्रभावित होने का सबूत दिया—है है !"

"गार्ड ने हमको डाँटना डपटना शुरू किया कि तुम पैदल मुसाफ़िरों को तकलीफ़ पहुँचा रहे हो। मैंने मजबूर होकर यह बहाना बनाया कि कुछ आम सड़ गये थे इसलिये हम उन्हें फेंक रहे हैं। हमने ख्याल नहीं किया था कि कोई मुसाफ़िर भी सड़क पर जा रहा है।"

चचा ने एकदम एक ऐसी आवाज़ में एक "वाह वाह" की जैसे किसी बोतल का काग अचानक खुल गया हो, "सुभानल्लाह ! सुभानल्लाह ! क्या बात की आपने ।"

कुछ देर को जैसे पंडित जी की ज़बान बन्द हो गई। स्तब्ध हो हमारा मुँह ताकने लगे। हम सब का यह हाल कि शर्म से पसीने-पसीने हो रहे हैं। गुस्से की लहरें उठती हैं और ठंड पड़ जाती हैं। आँखों ही आँखों में उनसे कहा कि जैसे भी हो इस दास्तान को ख़तम कीजिये। आख़िर पंडित जी ने भर्राये हुए स्वर में फिर दास्तान शुरू कर दी। बोले—मैंने गार्ड को इतमीनान दिलाया कि अब ऐसा न करूँगा। आखिर वह हम पर बिगड़-बिगड़ा कर चला गया। अब...

"चला गया ? तो यों कहिये कि आपकी जान बच गई। कभी-कभी तो साहब ये लोग ऐसा परेशान कर देते हैं कि नाक में दम आ जाता है। अब देखिये, एक अपना वाक़या अर्ज़ करता हूँ। सन्......खुदा तुम्हारा भला करे सन्...नौ...की बात होगी या दस की या ग्यारह ही हो तो अजब नहीं, तो बहरहाल कुछ ही था वह, उसी ज़माने की बात है। न, न याद आ गया हमें। सन् दस ईस्वी की ही बात है। उन्हीं दिनों बादशाह एडवर्ड हफ्तुम का इन्तकाल हुआ था। हम सहारनपुर से मुरादाबाद जा रहे थे। घर के लोग भी हमारे साथ थे। बच्चों में बस यह लल्लू था गोद में, या शायद दद्दू भी। न...दद्दू नहीं हुआ था, खैर, तो बात यह थी कि हमारी सास कुछ......ग़रज़

कि कुछ शिकायतें थीं उन्हें बीमारियों की ।......खतों के ज़रिये हमें मालूम हो चुका था कि वह इलाज...करवाने के लिये शायद शाहजहाँ-पुर जाने वाली हैं । हमने उन्हें खत में लिख दिया था कि हम मुरादाबाद का टिकट लेकर रवाना होंगे । अगर इस बीच आप शाह-जहाँपुर चली जायँ तो ऐसा इन्तज़ाम करती जाइयेगा कि हमें स्टेशन पर इसकी इत्तला मिल जाय । और अगर आप रुखसत हो चुकी हों तो हम मुरादाबाद उतरने की जगह उसी गाड़ी में शाहजहाँपुर रवाना हो जायँ । लीजिये जनाव, हमारे पहुँचते पहुँचते वह शाहजहाँ-पुर रवाना हो गईं । स्टेशन पर हमें इसकी खबर मिली । रात का वक्त था । सर्दी का मौसम । हमने सोचा कि अब कौन उतर कर आगे का टिकट ले । शाहजहाँपुर पहुँचकर मुरादाबाद से वहाँ तक का किराया अदा कर देंगे । वहाँ पहुँचे तो हमारी शराफ़त मुलाहज़ा फ़रमाइये कि रेल वालों को साफ़ साफ़ कह दिया कि भाई लोगो, हमारा टिकट मुरादाबाद तक का था । बाक़ी तुम्हारा जो कुछ हमारे ज़िम्मे निकलता हो अब ले लो । लीजिये साहब, वह तो अकड़ गये । कहें कि हम तो दुगना किराया लेंगे । हमारा क़ायदा नहीं है । बहुतेरा समझाया, लड़े झगड़े, मिन्नत खुशामद की लेकिन बेकार । मजबूरन दुगना किराया अदा करके छुट्टी मिली ।......तो मेरा यह बयान करने से मतलब यह कि यह रेल वाले जब सताने पर तुल जायँ तो कोई कसर उठा नहीं रखते ।'

चचा हुक्का पीने लगे । महफ़िल पर एक अप्रिय सन्नाटा छा गया । पंडित जी का अब यह हाल कि जैसे किसी नशे से दिमाग़ सुन्न हो गया हो । हम सब की अजीब हालत । दास्तान जारी रखने को कहें तो बात बीच से कट जाने का डर, चुप हो रहें तो यह शर्मिन्दगी कि पंडित जी की बात अधबिच में रह गई । इतने में चचा छक्कन ने कोहनियाँ उठा उठा कर अंगड़ाइयाँ और जम्हाइयाँ लेनी शुरू कर दीं । इससे कुछ ढारस बँधी कि चचा अब ज्यादा देर न बैठेंगे और बात शायद जल्द

ख़त्म हो सके । इसलिये धीरे से कह दिया—पंडित जी फिर ?

चचा ने एक नई जम्हाई लेकर कहा—ख़तम नहीं हुई अभी बात ? तो फिर कह डालिये जल्दी से, अब तो कुछ नींद आ चली हमें। क्या वक्त आ गया होगा ? सवा ग्यारह ? ओफ़्फ़ोह ! देखिये तो, बात-चीत में वक्त कैसी जल्दी कट जाता है। हाँ, तो क्या रह गया बाक़ी अब ?

पंडित जी के लिये ऐसी हालत में यह कहने के सिवा दूसरा रास्ता न था कि, "ऐसी कौन सी ज़रूरी बात है कि उसे ख़तम ही किया जाय। नींद आ रही है तो अब आप आराम कीजिये।"

चचा छक्कन न माने बोले—न न, बात ख़तम कर लीजिये आप। ऐसी जल्दी नहीं मुझे। वह बात यह है कि जल्द सो रहने और सुबह जल्द उठने का आदी हूँ। फिर भी क्या हुआ। आप शौक़ से कहिये।

पंडित जी बेचारे खोये खोये एक मुर्दा मुस्कराहट के साथ फिर बोले। बात शुरू तो तफ़रीह के लिये की गई थी पर हालत यह थी कि कोई बाहर से आता तो उसे निश्चय ही यह मालूम होता कि पंडित जी से कोई बहुत बड़ा अपराध हो गया है जिसके लिये यह बेचारा चचा छक्कन से माफ़ी मांग रहा है। "गार्ड के जाने के बाद हमें चिन्ता हुई कि एक तो चोरी का माल खाया और फिर उस पर यह शरारत कि इसकी ख़बर गार्ड तक पहुँची। अब अगर कोई झगड़ा उठा और कपड़ा हमारे पास से निकला तो अच्छा ख़ासा चोरी का मुक़दमा बन जायगा। (चचा छक्कन की जम्हाई) इसलिये यह सोचा कि जो आम बाक़ी हैं उन्हें चुपके से फेंक दिया जाय जिसमें कि कोई सबूत बाक़ी न रहे। आख़िर हमने आम और वह नई दोहर, जिसमें वे बँधे हुए थे, लपेट कर चलती गाड़ी में से बाहर फेंक दी। (चचा छक्कन की जम्हाई जिसके आखिर में कुछ इस तरह का शोर था जैसे मुँह चिढ़ाते समय निकलता है।) थोड़ी देर बाद हमारा सफ़र ख़तम हो गया और हम मुरादाबाद

उतर कर अपने घर पहुंचे......"

चचा उठ खड़े हुए। बोले—भाई हमें तो नींद आ गई। पंडित जी ! क़िस्सा तो बड़ा दिलचस्प था। मगर जैसा कि आप कहते हैं ऐसी कौन सी ज़रूरी बात है कि उसे ख़तम ही किया जाय। मैं तो माफ़ी चाहता हूँ, इन्हें सुनाइये आप।

ज़रा सी बात रह गई थी। हम सब ने कहा—चचा मियाँ, बस ज़रा सी तो बात बाक़ी है। अब सुन ही लीजिये।

"न भाई, अब तो सोयेंगे ही हम।"

"दो तीन फ़िक़रे ही तो रह गये हैं।"

"बस अब तुम ही सुनो।"

"हम तो सुन ही चुके थे। आप ही को सुना रहे थे पंडित जी...!"

"आँखें मिची जा रही हैं।

"हाँ हाँ, आराम कीजिये आप," पंडित जी ने कुछ खिसिया कर कहा।

"हाँ, बस लेटूंगा। वह दद्दू, तुम पान और पानी हमारे सिरहाने रख देना। और लल्लू, यहाँ से उठकर हुक्क़ा भी हमारे पलंग के साथ रख आना। सुबह ज़रूरत होगी हमें। मगर देखना, चिलम बाहर उलट लेना और लल्लू, वह दवा हमारी रखना न भूल जाना। और शायद यह उगालदान भी हमारे ही कमरे का है यहाँ। यह भी अपने ठिकाने पर पहुँच जाय। समझ लिया न ?"

"चचा मियाँ, इतनी देर में तो बात ख़तम भी हो जाती।"

चचा यों आग्रह करने से कुछ चिढ़ गये। बोले—होती तो हो जाती। फिर हम क्या करें। बात न हुई मज़ाक ही हो गया।

निराश होकर मुझे इसके सिवा चारा न दिखाई दिया कि पुकार पुकार कर कहूँ—चचा मियाँ, वह आम की गठरी असल में पंडित जी की नौकरानी ही की थी। घर जाकर यह भेद खुला और फिर ये दोहर

और आम फेंकने पर पछताये ।

"हमारी बला से ।"

यह कहकर चचा ज़ोर से दरवाज़ा बन्दकर अन्दर चले गये । ऐसा मालूम होता था कि हमारे आग्रह से वे और खीझ गये हैं। उनके जाने के बाद कमरे में सन्नाटा छा गया। और पहली बार हमें अनुभव हुआ क्लाक चल रहा है ।

## चचा छक्कन ने धोबिन को कपड़े दिये ?

चची एक दो बार नहीं बीसों बार चचा छक्कन से कह चुकी हैं कि बाहर तुम्हारा जो जी चाहा करे किया करो; मगर खुदा के लिये घर के किसी काम में दख़ल न दिया करो। आप भी हलाकान होते हो, दूसरों को भी हलाकान करते हो। सारे घर में एक हड़बड़ी-सी मच जाती है, मेरा दम घुटने लगता है, और फिर तुम्हारे काम में मैंने नुक़सान के सिवा कभी फ़ायदा होते भी तो नहीं देखा तो ऐसा हाथ बँटाना भला मेरे किस काम का ?

चचा इस बेक़द्री से ख़ीज जाते हैं। चिढ़ कर कहते हैं—लीजिए साहब, कान पकड़े ! फिर कभी आप के काम में दख़ल दूँ तो जो चोर की सज़ा वह हमारी सज़ा !" लेकिन उन्हें हर काम में टाँग अड़ाने का कुछ ऐसा रोग है कि जहाँ कहीं मौक़ा मिला कि फिर आप लँगोट कस-कर तैयार !

आज ही दोपहर की सुनिए। चची का जी अच्छा न था। गला आ गया था, इस के कारण हलकी-सी हरारत भी थी। आप मुँह लपेटे दालान में पड़ी थीं, कि धोबिन कपड़े लेने आ गई। चची ने कहा—बरेठिन, आज तो मेरा जी अच्छा नहीं है। कल या परसों आ जाना, तो मैले कपड़े दे दूँगी।

धोबिन बोली—बीबीजी, बरेठा आज रात भट्टी चढ़ा रहा है, कपड़े मिल जाते तो आठवें दिन मैं दे जाती। नहीं तो फिर वही दस-पन्दरह दिन लग जाएँगे।

चची ने कहा—अब जो हो, मुझमें तो उठकर कपड़े देने की हिम्मत नहीं।

चचा छक्कन दालान में बैठे मियाँ मिट्ठू को सबक पढ़ा रहे थे। कहीं चची की बात सुन पाई। उन्हें ऐसे मौके अल्लाह दे। झट उधर आ पहुँचे। बोले—क्या बात है ? कपड़े देने हैं धोबिन को ? हम दिये देते हैं।"

चची बोलीं—खुदा के लिये तुम रहने दो, हलाकान कर डालोगे सारे घर को। पहले ही मेरा जी अच्छा नहीं है। कल-परसों अल्लाह चाहेगा, तो मैं आप उठकर दे दूँगी।

चचा कब रुकने वाले हैं भला ! ख़ुदा जाने काम का जनून है उन्हें या घर के कामों से तबियत को ख़ास मुनासिबत है, या रोक दिये जाने में उन्हें अपने सलीके और सुघड़ापे का अपमान दिखाई पड़ता है। बोले—वाह, भला कोई बात है। यह ऐसा काम ही क्या है, अभी निपटाए देते हैं।

चची जानती हैं, कि वह अपने आगे किसी की नहीं सुनते। वे तो बड़बड़ाती हुई करवट ले पड़ रहीं, और चचा छक्कन चले धोबिन को कपड़े देने ! चची टोक चुकी थीं, इसलिये न तो आप ने किसी नौकर को आवाज़ दी, न किसी बच्चे को बुलाया, न किसी से पूछा, कि किसके कपड़े कहाँ पड़े हैं, ख़ुद ही घर की तलाशी लेनी शुरू कर दी। जो कपड़ा नज़र आया ख़ुद ही आँखों के सामने तान कर परखा या नीचे फैला कर देख लिया—"कमबख़्त पता भी तो नहीं चलता कि पहनने का कपड़ा है या झाड़न बन चुका है। चमारों के बच्चे भी तो इससे अच्छे कपड़े पहनते होंगे।" किसी कपड़े को छोड़ा, किसी को बग़ल में दबाया, कहीं झुक कर चारपाई के नीचे झाँका, कही एड़ियाँ उठा कर आलमारी के ऊपर नज़र डाली। मालूम होता था कि आज चचा ने क़सम खा ली है, कि जो काम होगा आप ही करेंगे। लेकिन आख़िर कब तक ? चचा छक्कन के लिये तो अल्लाह मियाँ बहाने पैदा कर देते हैं। कपड़ों

की तलाश में असबाब की कोठरी में गये थे, कि पाँच मिनट बाद अन्दर में आवाज़ें आनी शुरू हो गईं—अरे आना आना ! ओ बुन्दू ! ओ इमामी ! अमाँ दद्दू ! अरे भाई लल्लू ! किधर गये सब ? दौड़ कर आना, हाथ फँस गया । अमाँ, हमारा हाथ और किसका हाथ ? यहाँ कोठरी में ! नहीं निकलता ! यह क्या करते हो ? अक्ल मारी गई है ? हाथ कैसे खिचेगा । अरे भई सन्दूक़ सरकाओ । लाहौल विला ! अमाँ, ज़ोर लगाओ । एक सन्दूक़ नहीं सरकता सब से ? मिल कर, हाँ यूँ...! तौबा-तौबा, देखते हो हाथ को ? सारा छिल कर रह गया ! देखो इन बदतमीज़ों के तरीक़े ? मैले कपड़े रखने को जगहें क्या-क्या अनोखी निकाली हैं । सन्दूकों के पीछे मैले कपड़े ठूँसा करते हैं ? अहमक कहीं के ! तुम्हीं कहो यह जगहें कपड़ा रखने की हैं । नामाकूलों को इतना ख्याल नहीं आता, कि आख़िर ये खूंटियाँ किस मर्ज़ की दवा हैं ।

लीजिये, साहब, हमेशा की तरह सारा घर चचा मियाँ के गिर्द जमा हो गया और आपने सुनाने शुरू कर दिये अपने हुक्म :

'अब खड़े मेरा मुँह क्या ताक रहो हो ? जमा करो मैले कपड़े । पर देखो, रह न जाय कोई । एक-एक कोना देख लेना, दालान में ढेर लगा दो सब का । बुन्दू, तू हमारे कमरे में से मैले कपड़े समेट ला, दो-तीन जोड़े तो चारपाई के नीचे हिफ़ाजत से लपेटे रक्खे हैं, वह लेते आना और सुनना, वह छुट्टन या नब्बू का एक कुरता बाँस पर लिपटा हुआ कोने में रक्खा है, उस से परसों कमरे के जाले उतारे थे हमने । वह भी खोलते लाना और देख...हवा के घोड़े पर सवार है कमबख्त, पूरी बात एक बार में नहीं सुन लेता ! एक बनियाइन हमारी अंगीठी में रक्खी है, बूट पोंछे थे उससे, वह भी लेते आना ! जा, भाग कर जा । इमामी, तू बच्चों के कपड़े जमा कर । हर कोने और हर ताक़ को देख लेना । ये बदमाश कपड़े रखने को नई से नई जगह निकालते हैं ।'

नौकर गये तो बच्चों की बारी आ गई—कहाँ गये थे सब के सब ? ओ छुट्टन ! अरे ओ छुट्टन !! लीजिये मुलाहज़ा फ़रमाइए आपकी सूरत ।

अरे यह क्या हाल बनाया है ? कोयलों में कहाँ जा घुसा था ? उतार अपने कपड़े, दूसरे कपड़े फिर मिलेंगे। पहिले मैले कपड़े यहाँ लाकर रख और यह बन्नो किधर गई ? मैं कह रहा हूँ, आख़िर यह मर्ज़ क्या हो गया ! है तुम लोगों को ? जहाँ काम की सूरत देखी खिसक जाने की ठहरा ली चलो अन्दर, एक काग़ज़ और पेन्सिल ला कर दो हमें। आख़िर लिखे भी जायेंगे कपड़े या नहीं ? लल्लू, तुम बिस्तरों में से मैली चादरें और तकियों के ग़िलाफ़ निकाल लाओ।

ग़रज़, कि पाँच मिनट में घर की यह हालत हो गई, गोया आँख मिचौनी खेली जा रही हो। कोई इधर भाग रहा है, कोई उधर ! कोई चारपाई के नीचे से निकल रहा है, कोई कोने झाँकता फिर रहा है। किसी ने लिपटे हुए बिस्तर से कुश्ती शुरू कर रक्खी है, कोई कपड़े उतार तौलिया लपेटे भागा जा रहा है।

साथ-साथ चचा के नारे भी सुनने में आ रहे हैं। 'अरे आये ? अबे लाये ?' सब के हाथ-पैर फूल रहे हैं, सिट्टी-पिट्टी गुम है, टक्करें लग रही हैं।

कोई आध घंटे की मेहनत से सारे कपड़े दालान में जमा हुए। नौकर और बच्चे कपड़ों के घेर के गिर्द दायरा बाँध कर खड़े हैं। सूरतें सब की ऐसी हैं मानो स्वाँग भर रक्खा है। किसी के मुँह पर मिट्टी पड़ी है, किसी के बाल मटियाले हो रहे हैं, किसी के कपड़ों पर जाले लगे हुए हैं। चचा चारपाई पर बैठे एक-एक कपड़े का मोआइना कर रहे हैं। हर कपड़े को उँगली के सिरों से उठाकर देखते हैं, कभी बच्चों को कोसते हैं, कि 'कमबख्तों को कपड़े पहिनने का सलीका भी नहीं आता।' कभी धोबिन को डाँटते हैं, कि ख़बरदार जो एक दाग़ भी बाकी रहा।' कहीं बीच में वह बनियाइन भी हाथ में आ गई, जिससे आपने बूट पोंछे थे। ख़्याल न रहा कि यह अपनी ही करतूत है। बरस पडे—'अब देखो तो इसकी हालत। यह आदमियों के काम की मालूम होती है ? अल्लाह जाने बदतहज़ीबी कहाँ-कहाँ...'

दाग़ अच्छी तरह देखने से चचा को याद आ गया, कि यह बनियाइन उनके अपने कमरे की अँगीठी से निकाली गई होगी। चुनाञ्चे फ़ौरन कपड़ों में मिला दी और और बोले—चलो अब जो है सो है। लो अब कपड़ों को अलग-अलग कर दो, कि कौन सा कपड़ा किसका है।

दस हाथ कपड़े अलग-अलग करने में लग गये! हर एक को अपनी कारगुज़ारी दिखाने का ख्याल है। धोबिन चीख़ रही है—ऐ मियाँ, जाने दो, ऐ भाई रहने दो, मैं अभी आप अलग-अलग कर दूँगी। मगर बच्चे कहाँ सुनते हैं। कोई कहता है यह मेरी कमीज़ है, कोई कहता है—तुम्हारी कहाँ से आई, यह तो मेरी है। कोई कोट के पीछे झगड़ रहा है, कोई वास्कट पर। कोई कुर्ते की एक आस्तीन खींच रहा है कोई दूसरी। किसी के पायजामे के पायँचों पर रस्साकशी हो रही है। कपड़े चरर-चरर करके फट रहे हैं। चचा सब के नामों की सूची बनाने में व्यस्त हैं। बीच में सिर उठा-उठाकर डाँटते भी जा रहे हैं—'फाड़ दिया न? अबकी बनाने को कहना कोई नया कपड़ा। जो टाट के कपड़े न बना कर दिये तो। चले जाओ सब यहाँ से, हम अकेले सब काम कर लेंगे!'

बच्चों और नौकरों का क़ाफिला गया और धोबिन के साथ मिलकर सूची बनानी शुरू हुई। उसे हिदायतें दी गयीं, कि 'देख' हम पूरी फ़ेहरस्त बनाएँगे कपड़ों की। सब के कपड़े अलग-अलग लिखवाने होंगे और साथ ही बताना होगा कि इतने कपड़े गरम हैं, इतने रेशमी, इतने सूती!'

धोबिन बोली—योंही तो हमेशा लिखे जाते हैं।

चचा को अपनी इस क़ाबिले-क़द्र और शानदान तजवीज़ की दाद न मिली, तो आप धोबिन से चिढ़ गये—पगली कहीं की, हर रोज़ तो घर हुल्लड़ मचा रहता है, कि इसकी कमीज़ बदल गई, उसका पायजामा नहीं मिलता; और कहती है, कि यों ही लिखे जाते हैं कपड़े!

यों किसी को लिखना आता, तो यह रोज़-रोज़ की झक-झक क्यों हुआ करती ?

धोबिन चुप हो रही । कपड़े गिनने शुरू कर दिये । पर अब पहले ही कपड़े पर नई बहस शुरू हो गई । धोबिन कहती है, कि वह कमीज़ छुट्टन मियाँ की है, पर चचा कहे जा रहे हैं, कि नहीं बन्नो की है । धोबिन बोली—मैं क्या पहली बार कपड़े ले जा रही हूँ, इतनी भी पहचान नहीं मुझको ? चचा कहने लगे—बेवकूफ़ कहीं की । कपड़े बाज़ार से लाते हैं हम, सिलवाते हैं हम, रोज़ बच्चों को पहिने हुए देखते हैं हम, और पहचान तुझे होगी ?

शहादत के लिये बुन्दू को बुलाया गया । चचा ने उससे पूछा—यह क़मीज़ बन्नो ही की है न ?

बून्दू की क्या मजाल, कि चचा की बात झूठी बताये । डरता-डरता बोला—मालूम तो कुछ उन्हीं की सी होती है । पर वह आप ही ठीक-ठीक बताएँगी ।

बन्नो की तलबी हुई । वह आते ही बोली—वाह ! यह फटी-पुरानी क़मीज़ मेरी क्यों होती, छुट्टन ही की होगी ।

धोबिन को चचा के मिज़ाज की कैफ़ियत क्या मालूम ? वह कह बैठी—मैं तो कहती थी ! चचा के आग लग गई । बोले—औलिया की बच्ची है न यह, तो इन्हें क्यों न मालूम होगा ! मुँहफट, बदतमीज़ कहीं की, दूसरा धोबी रख लूँगा मैं ।

पूरे एक घंटे की मेहनत के बाद कहीं सूची बनकर तैयार हुई, कि कौन सा कपड़ा किसका है, और किसके कितने कपड़े हैं । अब जनाब धोबिन से कहा गया, कि तू सबके कपड़े गिन, इधर अपनी सूची का टोटल मिलाना शुरू किया । धोबिन गिनती है तो उनसठ होते हैं; चचा अपना टोटल मिलाते हैं तो इकसठ होते हैं । धोबिन बार-बार कहती है—मियाँ ठीक तरह जोड़ो, उनसठ ही हैं । पर चचा हैं, कि बिगड़े जा रहे हैं—तेरा जोड़ना ठीक है, और हमारा जोड़ना ग़लत हो गया ?

जाहिल कहीं की, उठकर देख, नीचे दबाये बैठी होगी !

धोबिन बेचारी हर तरफ़ देखती है, बार-बार कपड़े गिनती है, वही उनसठ निकलते हैं। चचा की आँखों के सामने भी एक बार गिन दिये और उनसठ ही निकले। आख़िर नए सिरे से सब कपड़ों का मुक़ाबिला किया गया। कोई घंटा-भर की खोज के बाद मालूम हुआ कि धोबिन ने बताये थे दो जोड़ी मोज़े और चचा ने लिखे थे चार। धोबिन उन्हें दो गिनती थी, और चचा चार अदद। इस पर फिर बेचारी धोबिन के लत्ते किए गये—जोड़ी के क्या माने ? चार नहीं थे मोज़े ? यों तू चार रूमालों को भी दो जोड़ी लिखा दे, तो यह हमारा क़ुसूर होगा ? इतना वक्त फिज़ूल ख़राब कर दिया। सारी उम्र कपड़े धोते गुज़र गई और अभी तक कपड़े गिनने का सलीक़ा नहीं आया !

बारह बजे धोबिन आई थी, चार बजे रुख़सत हुई। चचा छक्कन छुट्टी पाने के बाद सूची चची को देने गए। बोले, "निपटा दिया हमने धोबिन को !"

चची जली हुई थीं, बोलीं—घर में क़यामत भी आ गई, कोई बच्चा नङ्ग-धड़ङ्ग फिर रहा है, कोई गुसलख़ाने में कपड़ों के लिये गुल मचा रहा है, धोबिन दुखिया अलग खिसियानी होकर गई है। आधा दिन ख़राब कर के किस मज़े से कहते हैं, कि निपटा दिया हमने धोबिन को !

चचा चिढ़ गए—उन्हें कभी फूटे मुँह से तारीफ़ के दो लफ्ज़ कहने की तौफ़ीक़ न हुई ! चचा रूठ कर चारपाई पर पड़ रहे।

चची ने पूछा—पायजामों में से इज़ारबन्द भी निकाल लिए थे ?

चचा की आँखें कुछ खुलीं, मगर जवाब न दिया। बड़े मुनासिब वक्त पर रूठ गये थे।

इतने में सूची देखकर चची बोलीं—और यह रेशमी कमीज़ कौन सी ? हलके फीरोज़ी रंग की ? ऐ ग़ज़ब खुदा का, मैंने तो वह इस्त्री करने को अलग रक्खी थी ! कमबख्त दो कौड़ी की कर लायेगी, और इसमें से मेरे सोने के बटन भी उतार लिये थे या नहीं ?

अब तक तो चचा की त्योरी चढ़ी हुई थी। सोने के बटनों की सुनी, तो हड़बड़ा कर उठ बैठे। कहने लगे—बटन ? सोने के ? तुम्हारे ? तुम्हें मेरी क़सम ! हैं, हैं, वह तो नहीं निकाले हमने !

जूती पहिनते हुए चचा बाहर भागे—अरे भाई ! ओ बुन्दू, चली गई धोबिन। अरे इमामी, किधर गई धोबिन ? अरे दौड़ियो, ले गई, अमाँ, सोने के बटन !! तुम्हारी चची के। उसका घर किधर है ? चौक से मुड़कर किधर को ? अमाँ खोम्चे वाले, किसी धोबिन को जाते देखा है ? अरे भाई रेवड़ी वाले, कोई धोबिन तो उधर नहीं गई ? ओ भाई गँडेरियों वाले, कोई धोबिन......दाएँ हाथ को ? उस तरफ़ को...?

अभी तक चचा बटन लेकर वापस नहीं आये !

●